* ओ३म्-खम्ब्रह्म *

निवेदन ।

हे मेरे प्रिय पाठको !

मैं आज इस छोटे से लेख को आप की सेवा में इसलिये भेट करता हूं कि आप लोगों को यह भली भांति विदित हो जावे कि बाज़ार का भोजन धर्म्मशास्त्रानुसार तथा युक्ति युक्ति से महा अपवित्र होता है और अपवित्र भोजन खाने से बुद्धि मन्द और सन्तान बुरी उत्पन्न होती है और धर्म्म नष्ट होता है। प्रिय भ्राताओ ! तनक विचारो तो सही, यदि धर्म्म ही नष्ट हो गया तो फिर परलोक में संग जाने वाली कौनसी वस्तु रह गई ? क्योंकि धर्म्म ही एक ऐसा है जो परलोक में भी साथ जाकर सहायता करता है और नहीं तो पिता, माता, पुत्र, स्त्री और जाति इन में से एक भी साथ नहीं जाता सब यहां के यहीं रह जाते हैं। यथा—

नामुत्रहि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्र दारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥ और भी

धनानिभूमौ पशवश्चगोष्ठे, नारी गृहद्वारि जनाः श्मशाने ।
देहश्चितायां परलोकमार्गे, धर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥

॥ अर्थ—भजन ॥

न प्रिय कोउ करहु धर्म मन मोर ॥ टेक ॥

धन है साथी उसी भूमिलों जहां गड़ा है तोर। पशू उसी घर तक के साथी नारि द्वारलों सोर ॥ १ ॥ प्रियबन्धू समसानहिं जावें आगे दें सब छोर । यह प्रिय काया संग चितालों आगे धर्महि डोर ॥ २ ॥

इसीलिए किसी कवि ने कहा है—

क्यों अठिलात चले मग में शठ द्वै दिन के हित कीन्ह घमण्ड है ।
साथ न जाय है यौवन औ बल नाहक व्यर्थ बने बलवण्ड है ॥
त्यागि दे तू जग जालन को भज जो जग व्यापक ब्रह्म अखण्ड है ।
राम स्वरूप लखै करि ध्यान खड़ो शिर ऊपर काल प्रचण्ड है ॥

निवेदक—

स्थान मथुरा,
मिती १५ मार्च सन् १९०७ ई०

दामोदर-प्रसाद-शर्मा-दान-त्यागी,
कृष्णपुरी-निवासी ॥

ओ३म्-खम्ब्रह्म

❀ कृष्ण वाक्य ❀

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामस प्रियम् ॥१॥

भावार्थः

बासी विरस बुसा तथा, बुरे गन्ध रस जासु ।
जूठा अशुचि तथा कहैं, भोजन तामस तासु ॥२॥

* दान-त्यागी-का-पञ्चम-विज्ञापन *

अर्थात्

अपवित्र-भोजन-का-परित्याग

मैं (दामोदर प्रसाद शर्म्मा) आज सम्वत् १९६४ विक्रमी के प्रथम दिवस बाज़ार के भोजन का, जिस में कि पवित्रता नहीं पाई जाती ।

परित्याग करता हूं ॥

क्योंकि मनुष्य का मन पवित्रता से प्रसन्न और अपवित्रता से दुःखी होता है [इस]लिए धर्मशास्त्रकारों ने कहा है कि पवित्रता=शुद्धता ही धर्म का मूल [है] । जैसे—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ॥ ३ ॥
मनु० अ० ६ । ९२ ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥ ४॥
मनु० अ० १०॥ ६३॥

सत्यमस्तेयमक्रोधो ह्रीः शौचं धीर्धृतिर्दमः।
संयतेन्द्रियता विद्या धर्मः सर्व उदाहृतः॥ ५॥
इन सब श्लोकों में "शौच" शब्द आया है। } याज्ञवल्क्य अ० १। १२२

इसी प्रकार दक्ष जी महाराज कहते हैं कि बुद्धिमानों ने कहा है कि शौच को करना और अशौच को त्यागना चाहिये। यथा—

उक्तं शौचमशौचं च कार्य्यं त्याज्यं मनीषिभिः॥ ६॥
दक्ष अ० ५। १

और शौच (पवित्रता) में सदैव यत्न करना चाहिये क्योंकि द्विजपने के कारण शौच (शुद्धता) ही कहा है। शौच (निर्मलता) के आचरण से जो हीन है उस के सब कर्म निष्फल हैं। यथा—

शौचे यत्नः सदा कार्य्यः शौच मूलो द्विजः स्मृतः।
शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः॥ ७॥
दक्ष अ० ५। २

दक्ष जी महाराज कहते हैं कि शौच दो प्रकार का है एक बाहर का और दूसरा भीतर का, बाहरी मट्टी और जल से और भीतरी (अन्तः) शौच मन की शुद्धि से होता है। यथा—

शौचं च द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भाव शुद्धि रथांतरं ॥८॥
दक्ष अ० ५। ३

इसी प्रकार एक और महात्मा ने कहा है कि पवित्रता दो प्रकार की होती है। (१) बाह्य अर्थात शरीर को शुद्ध रखना। स्वच्छ जल से स्नान करना।

शुद्ध स्थान में रहना। उज्ज्वल वस्त्र धारण करना। निर्मल जल पीना और पवित्र भोजन करना आदि और (२) आभ्यन्तरिक जो विद्याध्ययन और ईश्वराराधन करने और विषयवासना और कामादि दोषों के त्याग से होती है ॥

यह विज्ञापन अपवित्र भोजन त्याग के लिए है इस कारण मैं यहां पर केवल पवित्रापवित्र भोजन विचार पर ही कुछ लिखता हूं ॥

देखिए! मनु महाराज कहते हैं कि नष्ट किया हुआ धर्म नाश करता है और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षा करता है। जैसे—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ॥ ९ ॥
मनु अ० ८। १५

(प्र०) धर्म पहचान के कौन लक्षण हैं?

(उत्तर) वेद और स्मृति में लिखा हुआ, सत्पुरुषों का आचार और अपना सन्तोष अर्थात् अपने आत्मा के अविरुद्ध प्रियाचरण ये चार लक्षण धर्म जानने के हैं। यथा—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ १० ॥
मनु० अ० २। १२

बस धर्म के इन्हीं चारों लक्षणों को स्मरण कर के मैंने अपवित्र भोजन का परित्याग किया है ॥

देखिए! वेदानुयायी मनुस्मृति में लिखा है कि न किसी को अपना जूठा पदार्थ दे, न किसी के भोजन के बीच आप खावे अर्थात् किसी का जूठा न खावे, न अधिक भोजन करे और न भोजन किये पश्चात् हाथ मुख धोए विना कहीं इधर उधर जावे। यथा—

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत् ॥ ११ ॥
मनु अ० २। ५६

आगे और भी सुनिए ! उन्मत्त, क्रोधी, रोगी इन का, बाल वा कीड़ा पड़ा हुआ, जान कर पैर से छुवा हुआ, भ्रूण हत्यारे का देखा हुआ, रजस्वला का छूआ हुआ, कौवा आदि पक्षियों की चोंच लगा हुआ, कुत्ता का छूना हुआ, गौ आदि पशुओं का सूंघा हुआ, ऐसे पके=बनाये हुए अन्न का भोजन कदापि न करे। यथा—

मत्तक्रुद्धातुराणां च न भुञ्जीत कदाचन ।
केशकीटावपन्नं च पदास्पृष्टं च कामतः ॥ १२ ॥

भ्रूणघ्नावेक्षितंचैव संस्पृष्टं चाप्युदक्यया ।
पतत्रिणावलीढं च शुना संस्पृष्टमेव च ॥ १३ ॥
गवा चान्नमुपाघ्रातं घुष्टान्नं च विशेषतः ॥ १४ ॥
मनु० अ० ४ । २०७–२०९

इसी प्रकार गौतम मुनि ने भी अपवित्र भोजन न करने की आज्ञा दी है। देखो गौतमस्मृति अ० १७ ॥

इसी भांति पाराशरजी महाराज कहते हैं कि जो भोजन मन को न भावे (अच्छा न लगे), उच्छिष्ट हो और जिस में कीड़े पड़े हों उसे न खावे । जैसे—

भाव दुष्टं न भुञ्जीत नोच्छिष्टं कृमि दूषितम् ॥ १५ ॥
पाराशर अ० ६ । ३८

लौकिक में भी एक कहावत प्रचलित है । कि—

रुचे सो पचे ॥ १६ ॥

अर्थात् जो भोजन मन को भाता है वही पचता है अन्यथा नहीं ॥

श्री कृष्णदेव जी महाराज ने भी गीता अ० १७ श्लोक १० में अपवित्र भोजन=खाना खाने का निषेध किया है । देखो इसी विज्ञापन का शीर्ष श्लोक । इसी प्रकार और सब शास्त्र भी अपवित्र भोजन करने का वर्णन करते हैं ॥

* बहुधा बाज़ारू भोजन ही सदा अपवित्र होते हैं *

अब आप प्रथम बाज़ार में हलवाइयों की हाटों पर पूरी, कचौरी, साग, दही, दूध और पक्वान्नादि खाद्य वस्तुओं की दशा को दीर्घ दृष्टि से देखिए कि उन की कैसी दुर्दशा अथवा अपवित्रता होती है । उन बाज़ारू भोज्य पदार्थों में मनु भगवान्, कृष्णदेव और पाराशर आदि ऋषियों के कहे हुए सब, वरन अधिक विशेष दोष पाए जाते हैं ॥

देखिये! प्रायः पाककारी पाक बनाते२ पाक खाते रहते हैं। बहुधा बिल्लियें दही दूध खाती पीती रहतीं हैं। कुत्ते कड़ाही चाटा करते हैं। और समय पाकर थाल में भी मुंह डालते रहते हैं। बन्दर और लंगूर लूटते रहते हैं। कौवा चोंच चुभाया करते हैं। चील झपट्टा मारा करते हैं। कोढ़ी कङ्गाल दृष्टि डाला करते हैं। और कभी २ यह चीलें और लंगूर और बन्दर ऐसा झपट्टा मारते हैं कि सारा खोमचा (पाक से भरा हुवा थाल) राजमार्ग=शाहराह में ऐसे कुठौर पर गिर पड़ता है कि जहां पर मल, मूत्र, थूक, खखार, कूड़ा, कर्कट और कीचड़ आदि अशुद्ध पदार्थ पड़े रहते हैं, परन्तु बेचने वाले इस अशुद्धता (नापाकी) से कुछ भी ग्लानि नहीं करते, और चट से गिरे-बिखरे और उक्त बुरी वस्तुओं से लिथरे और सने हुए पकवान को बटोर-बटार, पोंछ-पांछ, झाड़-झुड़ खोमचे (थाल) में धर=भर बेचने लग पड़ते हैं। जब लड्डू आदि पदार्थ सड़कों पर धर कर बांधे जाते हैं तो बहुधा गौ आदि पशु भी सूंघा ही करते हैं। प्रायः हलवाई लोग लोभ के वशीभूत होकर बासे-कूसे, बुसे-बुसाये, साग को पुनः गरम करके और गरमियों में सूके-साके और चौमासों में फफूंदे-फफांदे, दुर्गन्धित और कृमि पड़े हुए लड्डू-पेड़ों को तोड़-ताड़, फोड़ फाड़, मीज-मास नई चासनी में मिला-मिलू या गरम पानी के छींटे दे फिर बांध लेते हैं। और पुनः ताने, टटके, हाल के कह कर बेचते हैं। बहुधा हलवाइयों के यहां छोटी दुकानों में बाहर भीतर आने जाने के कारण खाद्य पदार्थ दुकानदारों के पैरों से छूए जाते हैं। ठुकराए जाते हैं। और टांगों से लांघे जाते हैं। मांसाहारी और रजस्वला स्त्रियों से भी छुए जाते हैं। क्योंकि वह भी तो ग्राहक होते हैं। बाज़ार के पदार्थों पर भ्रूण हत्यारे महापातकियों की भी दृष्टि पड़ती है। क्योंकि खुले मैदान में बिकते हैं॥

(प्रश्न) हां भाई! हम समझ गये, तेरा कहना सत्य है; धर्म्मशास्त्रानुसार बाज़ार का भोजन करना योग्य नहीं। परन्तु अब सत्पुरुषों के आचार के कुछ दृष्टान्त और सुनादे। पहिले कौन कौन नहीं खाते थे? और अब कौन कौन नहीं खाते हैं?

(उत्तर) महाराज! पहिले समय में तो बाज़ार में पकाए हुए पदार्थ जैसे कि रोटी-दाल, पूरी-साग, लड्डू-पेड़े आदि बिकते ही न थे। पर हां जब यवनों ने इस देश पर अधिकार किया। आर्य्यों को काफ़िर (हिन्दू) नाम से पुकारा। आर्य्यों का धर्म

ध्वंस किया । आर्य्यों से द्वेष और घृणा की । आर्य्यों के पुस्तकालयों को जलाया। हिन्दुओं के मन्दिरों और मूर्त्तियों को तोड़ा। हिन्दुओं के तीर्थ स्थानों को बिगाड़ा हिन्दुओं को तिलक तक न लगाने दिया। और फिर हिन्दुओं को यवन बनाना चाहा तो बल पूर्वक बाज़ारों में दाल, चावल, कढ़ी, रोटी आदि बनाए हुए पदार्थों की दुकानें खुलवादीं। तो उसी समय से कुछ एक मनुष्यों ने भयभीत होकर और कुछ मनुष्यों ने आलस्य के फन्दे में फँस कर बाज़ारी भोजन करना (खाना) आरम्भ कर दिया। परन्तु जो मनुष्य यह समझते थे ! कि—

तन धन धरती धाम सुत, मात पिता और प्रान।
एक धरम के साम्हने, हैं सब तुच्छ समान ॥ १७ ॥

उन लोगों ने बाज़ार के अपवित्र भोजन को ग्रहण नहीं किया अर्थात् नहीं खाया और यही कारण है कि उन धर्म हठीलों में से कान्यकुब्ज, महाराष्ट्र और नागर आदि ब्राह्मण और कुछ चौबे भी बाज़ार के अपवित्र भोजनों से अब तक मुख मोड़े रहते हैं ॥

(प्रश्न) क्या चौबे लोग बाज़ारू अपवित्र भोजन नहीं करते ? हम तो रात दिन देखते हैं कि यमुना पुत्र सदैव विश्रामघाट पर हलवाइयों की हाटों से ही लिया करते हैं। चाहें अपने पास से लें चाहें यात्री से मांगकर लें ॥

उ०—महाराज ! आपका कहना सत्य है किन्तु अब भी ऐसे बहुत से चौबे हैं जो कि अपवित्र भोजन से घृणा करते हैं। लीजिये ! आपको उन में से केवल दो–चार सज्जनों का नाम सुनाये देताहूं । क्योंकि सर्व सज्जनों की नामावली लिखने के लिये तो यहां स्थानाभाव है ॥

१—चार सहस्र चतुर्वेदियों को धर्मोपदेश देने वाले और काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, और द्वेषादि शत्रुओं को जीतने वाले श्री १०८ योगीराज रज्जूजी महाराज चतुर्वेदाचार्य्य ॥

२—अष्टादश पुराणों को जानने और मानने वाले परन्तु—

यद्यपि शुद्धम् लोक विरुद्धम्।
ना करणीयम् ना करणीयम् ॥ १८ ॥

की प्रथा पर चलने वाले, वैदिक धर्म्मावलम्बियों से घृणा करने वाले, आर्य्य समाजियों से चिढ़ने वाले, श्रीमद्भागवतादि पुराणों की कथा कथन कर हिन्दू धर्म्मोपदेश देने वाले, चतुर्वेदी कहलाने वाले श्री मान्यवर पण्डित वामनाचार्य्य जी महाराज हाथरस वाले । व इन्हीं के सदृश उनके भ्राता—

३—श्री मान्यवर चतुर्वेदी पण्डित बालकृष्णजी महाराज ।

४—श्रीमान् चौबे गुलवाजी पाठक ,,
५— ,, ,, दाऊजी पाठक ,,
६— ,, ,, प्रह्लादजी पाठक ,,
७— ,, ,, दामोदरजी दक्षगोत्री ,,
८— ,, ,, बाबूलालजी दक्षगोत्री ,,
९— ,, ,, नारायणदत्तजी पाठक ,,
१०— ,, ,, टेनचीजी बुदौआ ,,
११— ,, ,, फैलीजी मटकाजीकेभ्राता ,,
१२— ,, ,, गजघण्टजी गूजरमलवारे ,,
१३— ,, ,, कृष्णाजी काहौ ,,
१४— ,, ,, सौंकजी वतोलाजीकेपुत्र ,,

मेरीधर्मिष्ठ बड़ बूआ (फूफी) नाम मर्य्यादाजी बाजार के अपवित्र भोजन का त्याग किये हुए हैं ॥

मेरी माताजी के गुरु श्री१०८रामचन्द्रजी महाराज ।

मेरे पिताजी के गुरु श्री१०८नन्दनजी महाराज ।

यह दोनों चतुर्वेदाचार्य्य और इन के शतशः शिष्य अपवित्र भोजनों को अपनें पास तक नहीं आने देते थे । अब बीचमें इस अन्य प्रकरण को भी पढ़लीजिये ॥

(प्र०) अरे बेटा! रज्जूजी ने अभीतक क्रोध तो नांय छोड़ो ॥

(उ०) अजी महाराज! आप अपने श्रीमुख से ऐसे असह्य और असभ्य वाक्य का प्रयोग न कीजिये, रज्जूजी महाराज ने वास्तव में क्रोध को जीतलिया है किन्तु आप नहीं समझते ॥

(प्र०) तो का हम मूरख हैं ? जो नांय समझें ॥

(उ०) नहीं महाराज कृपानिधे ! आप मूर्ख तो नहीं हो, परन्तु मैं आपको विद्वान् भी न कहूंगा, क्योंकि आपने कुछ विद्याध्ययन नहीं किया आपतो केवल सदैव गपोड़े गढ़ा करते हो, और अहमता का अहङ्कार करते रहते हो। देखिये श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११। अध्याय १८ श्लोक ४२ में श्रीकृष्णदेवजी उद्धवजी से कहते हैं कि जिसके देहादिक में अहंकार है सो मूर्ख है। यथा—

मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिः ॥ १९ ॥

इसी प्रकार श्रीकृष्ण भगवान ने गीता अध्याय ३ श्लोक २७ में अर्जुन से कहा है कि मूर्ख वह है जो अपने में अहमता मानता है। यथा—

अहंकार विमूढ़ात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ॥ २० ॥

अर्थ—दोहा

अपने को कर्त्ता कहै मूढ़ बुद्धि नर जोय ॥ २१ ॥

महाराज ! भृकुटी न चढ़ाइये। नेत्र लाल न कीजिये। नासिका न सिकोड़िये। दन्त न पीसिये। ओष्ठ न फरकाइये। मुख तिरछा न कीजिये। हस्त न मलिये। जिह्वा को सम्भालिये। कुवाक्य न कहिये। लकुट को न उठाइये। शरीर को न कंपाइये। मुख से झाग न छोड़िये। कुदृष्टि से न देखिये। क्रोधित न हूजिये। आत्मा को क्लेशित न कीजिये। किन्तु शान्त हूजिये और कृपा करके {क्योंकि आप वीरभद्र रुद्र का रूप शीघ्र (बात करते करते) धारण कर लेते हो} मेरे सविनय निवेदन को, जिस को कि मैं दोनों कर जोड़कर करता हूं, धीरज के संग श्रवण करलीजिये। हे महाराज कृपासिन्धो ! रज्जूजी क्रोधी नहीं हैं, किन्तु वह सत्याचारी, सत्यव्यवहारी, सत्यवादी और सत्यके प्रेमी हैं, इसी लिये यदि कोई मनुष्य उन के सत्यवचन के विरुद्ध कुछ मिथ्या कह बैठता है। तो वह रज्जूजी महाराज उसकी असत्यता को दबाने के लिये सिंहनाद कर उठते हैं।

अर्थात् सिंह समान धाड़ते हैं। और यह उनके ब्रह्मचर्य्य का प्रताप है। बस जब रज्जू जी महाराज नैक भी बल पूर्वक बोलते हैं। तो अज्ञानी और मिथ्याभि-

मानी लोग कह देते हैं। कि वह क्रोध करते हैं। परन्तु वास्तव में वह क्रोध नहीं करते। उन्हों ने क्रोध को भली भांति जीत लिया है। मैं तो यही कहूंगा कि यदि चौबे लोग श्री १०८ रज्जूजी महाराज योगीराज की धर्म्म सम्बन्धी आज्ञा का पालन करें तो बहुत शीघ्र ही उन्नति के शिखर पर पहुंच जावें। क्यों कि बिना धर्म के कोई भी आर्य्य कार्य्यपूर्ण नहीं होता। मैं बड़े साहस से कहता हूं कि श्री १०८ रज्जू जी महाराज योगीराज हिन्दूधर्म्मशास्त्र के पूर्ण ज्ञाता हैं॥

(प्रश्न) तेरी समझ में शूद्र का अन्न खाना उचित है या नहीं ? क्योंकि बहुधा देखने में आता है कि पौराणिक पण्डित खाने कमाने के कारण मन्दिर (पाषाण मूरतालय) बनवालेते हैं और फिर काष्ठ, पाषाण और पीतलादि धातुओं की मूर्तियों का चरणामृत पिलाकर, प्रसाद खिलाकर, तुलसीदल देकर, कण्ठी बांधकर, दुपट्टा उढ़ाकर शूद्रों को शिष्य बना लेते हैं और फिर उनके अन्न से अपनी उदरदरी को सदैव भरते रहते हैं॥

(उत्तर) श्री महाराज कृपानिधे ! मैं तो इस विषय में कुछ भी नहीं समझता; पर हां; जो कुछ मैंने शास्त्रों में सुना है वह आप के कर्णगोचर करे देता हूं। सुनिये !

शूद्रान्नान्नरकं व्रजेत् ॥ २२ ॥

अर्थ=शूद्र का अन्न खाने से नरक होता है ॥

मृत सूतक पुष्टाङ्गे द्विजे शूद्रान्न भोजने ।
अहमेवं न जानामि कां योनिं स गमिष्यति ॥ २३ ॥

अर्थ=जो ब्राह्मण जन्मऔर मृतक के सूतक में खाता है या शूद्रका अन्न खाता है (व्यास जी कहते हैं कि) मैं नहीं जानता- उसकी क्या क्या (बुरी) गति होगी॥

शूद्रान्ने नोदरस्थेन यदि कश्चिन्म्रियेत यः ।
स भवेत् शूकरो नूनं तस्य वा जायते कुले ॥२४॥

अर्थ=यदि मरते समय में शूद्र का अन्न ब्राह्मण के पेट में होवे तब वह मर कर निश्चय करके शूकर होगा या जिस शूद्र का अन्न था उस के कुल में होगा॥

यश्च भुङ्क्तेऽत्र शूद्रान्नं मासमेकं निरन्तरम् ।
इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वाचैव जायते ॥२५॥

अर्थ=जो ब्राह्मण शूद्र का अन्न निरन्तर एक महीने तक खाले तब वह इसी जन्म में शूद्र है और मर कर कुत्ता होगा ॥

गृध्रो द्वादश जन्मानि सप्त जन्मानि शूकरः ।
श्वा च वै सप्त जन्मानि इत्येवं मनुरब्रवीत् ॥२६॥

अर्थ=मनुजी तो यह कहते हैं कि वह ब्राह्मण जिसके पेट में मरते समय शूद्र का अन्न रह गया हो मर कर बारह जन्म तक गीध और सात जन्म तक शूकर और सात जन्म तक कुत्ता होगा ॥

(प्रश्न) अरे भाई ! यह श्लोक कहां के हैं ? हमने तो आज तक कभी सुने ही नहीं ॥

(उत्तर) श्री महाराज सत्यप्रेमी जी ! आप सुनते कैसे ? जब कि स्वार्थी कथकड़ लोग ऐसे श्लोक निज हानि होने के भय से श्रोताओं को सुनाते ही नहीं । महाराज ! यह श्लोक श्री वेदव्यास जी महाराज के कहे हुए हैं जिनको आप—

अष्टादश पुराणानां कर्त्ता सत्यवती सुतः ॥ २७ ॥

कहा करते हो । देखो व्यासस्मृति । अ० ४ । श्लो० ६३ से ६७ तक ॥

(प्रश्न) क्यों भाई ! तेरी समझ में मन्दिर का बनाना कैसा है ? अच्छा या बुरा ॥

(उत्तर) महाराज सत्य विचारी जी ! सुनिये ! यदि मनुष्य मन्दिरको पुण्यार्थ बनवा कर उसके व्ययार्थ कुछ आजीविका का प्रबन्ध करदे तो तो हिन्दू धर्मानुसार मन्दिर का बनाना अच्छा है । और यदि कोई ब्राह्मण (चाहे एक बड़ा भारी विद्वान् ही क्यों न हो) अपने व्यय के लिये धनोपार्जनार्थ मन्दिर को बनवावे तो हिन्दूधर्मशास्त्रानुसार मन्दिर का बनाना बहुत ही बहुत बुरा है । क्योंकि देवालय (मन्दिर) की आय अर्थात् देवता की भेट (मूर्त्ति पर की च्हृत) को जो ब्राह्मण खाता है या यों कहिये कि जो ब्राह्मण मन्दिर की आय (आमदनी) से रोटियों का काम चलाता हुआ अपना वैभव बढ़ाता है और औरों के सम्मुख अपने को प्रतिष्ठित (इज्ज़तदार) जनाता है वह धर्माज्ञानुसार ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं रहता और अधम=नीच=शूद्र होजाता है । यथा—

असि जीवी मसि जीवी देवलो ग्राम याचकः ।
धावकः पाचकश्चैव षडेते ब्राह्मणाधमः ॥ २८ ॥

अर्थ=ब्राह्मणों में यह छः कर्म्म करने वाले शूद्र से भी नीच गिने जाते हैं, तलवार से रोटी पैदा करने वाला १, पोथी पत्रा लिखकर रोटी कमानेवाला २, ग्राम का भिखारी ३, हलकारा ४, रसोइया ५, और देवल की चढ़त लेने वाला, पुजापा खाने वाला मठधारी ६ ॥ देखो हिन्दूधर्मशास्त्र० ॥

अब आप पुनः अपने प्रकरण पर आजाइये ॥

(प्रश्न) अरे भाई ! तूने अपवित्र भोजन के लिये सत्पुरुषों के सदाचार का भी प्रमाण देदिया । परन्तु तू अब हमें यह और बतलादे कि तेरी आत्मा का क्या विचार है ?

(उत्तर) महाराज ! मेरा आत्मा बाज़ारी भोजन अर्थात् बाज़ार में दूकानों पर पकाये हुए (बनाये हुए) खाद्य पदार्थों को ग्रहण करना नहीं चाहता । क्यों कि वह निम्न लिखित कारणों करके महा अशुद्ध होते हैं ॥

सुनिये ! यह दूकानदार लोग बहुधा बड़े तड़के सोतेसे उठते ही भट्टी को सुलगाकर पाक बनाने लग पड़ते हैं । न हाथ पांव धोते । न दांतन कुल्ला करते । न झाड़ू चौका देते । न कड़ाही आदि बरतन मलते । न स्नान करते । पाठ पूजा का तो यह बिचारे नाम ही नहीं जानते । पर हां दम दम में चिलम की दम अवश्य लगाते हुए कहते रहते हैं । कि—

लगे दम । मिटे ग़म ॥ २९ ॥

जो पीवेगा चरस । तो पावेगा दरस ॥ ३० ॥

कभी कभी कोई कोई आलसी टट्टू पूरे निखट्टू जूठन—कूठन, झाड़न—झूड़न, धोअन—धाअन भी भट्टी ही में झोंक देते हैं । और जाड़े के दिनों में रात्रि समय कोई कोई अफ़ीमची, चिलमची, भंगेड़ी, गंजेड़ी और चरसी यार भट्टी ही में थूक—खखार करने के सिवाय लघुशंका भी कर लेते हैं । दूकानों के नीचे बाज़ार में सड़क पर जहां कि प्रत्येक प्रकार की मलीन, घिनौनी वस्तुएं पड़ी रहती हैं । थाल, परात और कड़ाह आदि बासन धर कर लड्डू आदि पकवान बनाते हैं । इधर यह लोग लड्डू पेड़े बांधते हैं । उधर भंगी झाड़ू देते हैं । तो सारी धूर (गर्द=ख़ाक) उड़कर उन खाद्य पदार्थों में मिल जाती है । जिस से वह पदार्थ अपवित्र होने के अतिरिक्त बहुधा किस किसे=किरकिरे भी होजाते हैं । कभी कभी चील कौआ

आदि पक्षीगण उड़ते उड़ते लड्डूओं की निकती (बून्दी) से भरे हुए कड़ाह में बीट करजाते हैं । और हलवाई लोग उसी समय उस में कोंचा मार देते हैं ॥

बहुधा हलवाई लोग पाक बनाने के समय चिलम पीते-रागें खुजाते-मूत्रेन्द्रिय को सहराते-धोती सम्भालते-चूतर मलते-नाक छिनकते-आंख के कीचर पोंछते कान से मैल निकालते-पेशाब करते-बात करनेसे थूक उछालते-नेत्र मलते-और आंख बचाकर उसी में से खाते रहते हैं । यदि पाक बनाते बनाते कुछ पाक पृथ्वी पर गिर परे तो उसे चट से उठाकर थाल या कड़ाह के में मिला देते हैं । और लड्डू पेड़े ऐसी असावधानी से बांधते हैं कि मक्खी, मच्छर, आदि जन्तुओं तक को भी मिलालेते हैं । और यही कारण है कि बहुधा मिठाई के भीतर से बर्र-ततैया-माछी-मच्छर और पतंगादि जन्तु और चींटा-चींटी आदि कीट (कभी कभी वह पूर्ण रूप से और कभी कभी उन के केवल अवयव ही) निकलते हैं । जिन को किसमिस-कालीमिरच-लौंग और इलाइची के धोखे में खाकर बहुधा मनुष्य रोगी हो जाते हैं । श्लेष्मा (जुकाम) होने के समय पाककर्त्ताओं की नाक भी कभी कभी खाने की वस्तुओं में टपक पड़ती है । और हाथ से तो वह (पाक बनाने और बेचने वाले) प्रतिक्षण नाक को पोंछा ही करते हैं । जब इन लोगों को खांसी होती है और खों खों करते हैं तो सारा थूक भोज्य पदार्थों पर जा पड़ता है । जब यह लोग आपस में या किसी ग्राहक से लड़ते भिड़ते हैं तो उस काल भी इन का थूक खाद्य वस्तुओं पर पड़ता है । हलवाई लोग निज वस्त्र धुलाने और बाल बनवाने में भी बहुधा बहुत अबेर करते हैं । इसी कारण यह लोग प्रति समय शिर और शरीर को खुजलाया करते हैं । जिससे कि हाथ अशुद्ध रहते हैं । रात दिन देखने में आता है कि बहुधा हलवाई लोग कूंजड़ियों से काने-कुतरे-बचे-खुचे-गले-सड़े सस्ते साग चुकालाया करते हैं । और बिन बीने-चूने-धोए-धाए चटपट काट-कूट-तोड़-ताड़-मरोड़-मराड़ उसी हदेली-जली-बली-काली-कलोटी कड़ाही में सिजने को पटक देते हैं । और उस सिजे-अधसिजे साग में थोड़ा बहुत नौन हल्दी और मिरचा मिला मिल्द देते हैं । और फिर उसे अनधुए माटी के कूंडे या हांडी में निकाल धरते हैं । और फिर सुधि नहीं लेते चाहे उस में फड्डड़-मच्छड़ आदि जन्तु ही क्यों न गिर पड़ें । बिन देखे भाले सगौटा में से साग निकाल निकाल कर ग्राहकों को देते चले जाते हैं । जब तक कि उस सगौटा के पैंदे से हुरय न जा अटके या खटके ॥

कभी कभी हलवाई लोग घुने घुनाए अमचूर को नौन मिरचा के साथ पुराने गुड़ में सड़ा देते हैं और फिर उस सड़े, गले, कीड़े पड़े हुए पदार्थ को मीठी चटनी के नाम से ग्राहकों को महीनों तक देते रहते हैं ॥

बहुधा हलवाइयों के यहां गड़रियों और कसाइयों (गोहिंसकों) का दूध आता है। जिस में वह लोग (गड़रिये और गोवधिक) अपना महा अपवित्र पानी भी मिलालाते हैं। मेले तमाशों में हलवाई लोग भोज्य पदार्थों को तेली–तमोली–कोली–कुम्हार–चमार–आदि नीच जाति के मनुष्यों के सिर पर और सीतलावाहन (गर्द्धभसेन) की पीठ पर लाद कर लेजाते हैं। बहुधा देखने में आता है कि हलवाई लोग यवनों के लोटे–कटोरे और प्याले अपने हाथ में लेलेते हैं। और कड़ाही–थाल और कूंडे में से दूध–रवड़ी और दही भर कर उन को लौटा देते हैं। कसाइयों के दूध के बरतन तो हलवाइयों की दूकानों पर रहे ही आते हैं। जब साहब लोगों के सेवक जैसे खानसामा–बहरा–भिश्ती–मिहतर और ग्रासकट आदि अच्छे अच्छे सफ़ेद साफ़ कपड़े पहन कर सौदा ख़रीद ने आते हैं। तो सौदा लेने और दाम देने में बहुधा हलवाइयों को छूलेते हैं। और जब कभी सौदा लेने में तकरार हो जाती है। तो सौदा को वापिस देकर चले जाते हैं। और बहुधा डरपोक और लोभी हलवाई लोग उस वापिसी सौदा को अपने असलमाल में मिला लेते हैं। रेलवे स्टेशनों पर तो गोश्त–रोटी और पूड़ी–साग वाले पास पास ही बैठकर बेचा करते हैं। शुद्धता में तो रेल की गाड़ियों ने उड़ीसा वाले श्री जगन्नाथजी के मन्दिर को भी मात कर दिया क्योंकि मन्दिर में तो केवल हिन्दुओं ही की सात जात मिलकर निरामिष प्रसाद खाती हैं। परन्तु रेलगाड़ियों में तो पृथ्वी भर के लोग क्या कारे क्या गोरे सब ही मिलकर आमिषाहार करते हैं ॥

बाजार में जब बहुत भीड़ भाड़ होती है। तो भंगी, चूहड़, चमार, धोबी, धानुक, भी हलवाइयों की हट्टों को छूते हुए चले जाते हैं। और हलवाई लोग लोभ के फन्दे में फसकर इस कौतुक को देखते हुए भी दोनों आंख मीच लेते हैं। और अपने दोनों होठों का सम्पुट बनालेते हैं। या यों कहिये कि दोनों आखों पर ठीकरी धर मौन धारण कर लेते हैं ॥

बहुधा हलवाई लोग कुछ मिठाइयों को जैसे सांवौनी, बतासे, पट्टी, गजक, रेवड़ी और खांड़ के खिलौने आदि यवनों से भी बनवाया करते हैं ॥ अब यहां ठहर कर कुछ अन्य वाक्य भी पढ़लीजिये ॥

(प्र०) यवन किसे कहते हैं ? । (उ०) कोश में तो यवन के अर्थ म्लेच्छ के हैं अर्थात् जो लोग वेद और शास्त्र से विपरीत चलते हैं किन्तु मुनिवर श्री चाणक्य जी महाराज इस प्रकार कहते हैं कि तत्वदर्शियों ने कहा है कि सहस्त्र चांडालों के तुल्य एक यवन होता है और यवन से नीच दूसरा कोई नहीं है । यथा—

चांडालानां सहस्त्रैश्च सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
एकोहि यवनः प्रोक्तो न नीचोयवनात्परः ॥ ३१ ॥
चाणक्यनीति अ० ८ । ५ ॥

इसी प्रकार आपस्तम्ब स्मृति अ० २ श्लोक० ९ में लिखा है । कि मूत्र विष्ठा इन के पड़ने से और यवन के जल भरने से कूप भी दूषित (अशुद्ध) हो जाता है । यथा—

कूपो मूत्रपुरीषेण यवनेनापि दूषितः ॥ ३२ ॥

एक धर्मात्मा ने तो यावनी बोली बोलने का भी निषेध किया है । यथा—

न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥ ३३ ॥

अर्थ=चाहे कितना ही दुःख प्राप्त हो और प्राण कण्ठगत अर्थात् मृत्यु का समय भी क्यों न आया हो तो भी यावनी अर्थात् म्लेच्छ भाषा मुख से न बोलनी चाहिये ॥

भरतपुर के प्रबल प्रतापी महाराजा सूर्य्यमल्ल जी ने अपनी सभा में आज्ञा दे रक्खी थी कि "जो कोई यावनी बोली का बोल बोलेगा वह सभा से उठा दिया जायगा" ॥

सन् १८८१ ई० की १९ वीं अगस्त को रियासत रायपुर—राजपूताना के ठाकुर हरीसिंह साहब से महर्षि दयानन्द जी महाराज ने तो यहां तक कहा था । कि "आर्य्य पुरुषों को उचित है कि यवनों को अपना राज मन्त्री न बनावें" ॥ देखो धर्म वीर पं० लेखराम कृत महर्षि जीवनचरित्र पेज ५४७ लाईन १८ ॥

हाय, हाय, कैसे आश्चर्य की बात है कि जो लोग यावनी भाषा के उच्चारण में भी दोष समझते थे उन्हीं के सन्तान आज के दिन यवनों के हाथ की बनी हुई मिठाइयों को प्रसन्नता पूर्वक खाते हैं ॥

(प्र०)—मुनिवर चाणक्य कौन थे ?

(उ०) यूनानी बाबिल देश के यवन बादशाह सिल्यूकस की बेटी से विवाह करने वाले बौद्धावलम्बी मगध देश के महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त के प्रधान मन्त्री थे ॥

(प्र०) महाराज चन्द्रगुप्त किन के पुत्र थे ?

(उ०) मगध देश के नागवंशी महाबली महाप्रतापी महाराजाधिराज महानन्द जी के पुत्र थे। इन्हीं महाराजाधिराज महानन्द जी के पास छः लाख पियादे, बीस हज़ार सवार और नौ हज़ार हाथी थे। इन्हीं के डर से यूनान का बड़ा बादशाह सिकन्दर, जिस ने यूरोप और एशिया में बड़े २ देशों को जीत लिया था, भारतवर्ष से भाग गया था ॥

हलवाई लोगों की जाति पांति का भी ठिकाना नहीं लगता। बहुधा चारों ही वर्ण के होते हैं। इसीलिये शास्त्रकारों ने आज्ञा की हुई है, कि पाक बनाने वाले को प्रति दिन शरीर–शिर और डाढ़ी के बाल व नख कटवाने चाहिये तथा कपड़ों सहित स्नान करना चाहिये और भोजन की ओर मुख कर के न बोलना न खांसना न थूकना चाहिए वरन ढाटा बांधे रहना चाहिये। यथा–

अधिक महरहः केश श्मश्रु लोम नख वापनम् ॥ ३४ ॥
उदकोपस्पर्शनं च स ह वाससा ॥ ३५ ॥ देखो आपस्तम्भ सूत्र ॥

देखने में आता है कि चतुर्वेदियों के पैर पूजने वालों में से एक बल्लभाचार्य्य के कुल में अब तक इन नियमों की थोड़ी-बहुत चाल चली जाती है ॥

(प्र०) ओ ! हो ! क्या वल्लभाचार्य्य जी चतुर्वेदियों के चरण पूजक थे ?

(उ०) हां हां। वल्लभाचार्य्य जी चौबों के पग पूजक थे। इस का पूरा २ पता तो सौ के आधे पचास और दो बावन राजा और चार सम्प्रदायों के तीर्थपुरोहितों से, जो कि आजकल बड़े चौबेजू के नाम से विख्यात हैं, मिलेगा। परन्तु इतना तो मैं ने भी निज नेत्रों से देखा है कि वल्लभवंशी विश्राम घाट पर बड़े चौबेजू के पैर धोते हैं। और वन यात्रा जाने के समय उन्हीं से नियम लेते हैं ॥

(प्र०) क्या चौबे वल्लभकुल के चेले नहीं होते ?

(उ०) नहीं, मुझे तो पूर्ण निश्चय है कि चौबे लोग वल्लभ कुलियों के

चल नहीं होते। और होते ही क्यों। जब कि उन के यहां हां दो गुरु गद्दी वर्तमान में भी विद्यमान हैं॥

१–श्री १०८ नन्दन जी महाराज की॥

२–श्री १०८ शीलचन्द्र जी महाराज की॥

(प्र०) अरे भाई! तू क्या जाने, बीसियों चौबे वल्लभकुलियों के चेले हैं। और कुछ एक ऐसे भी प्रेमी हैं जो उन के बनाये हुए दूध–भात, दाल–चावल, कढ़ी रोटी को भी खा लेते हैं॥

(उ०) महाराज! यदि ऐसा है? तो मैं उन से यही कहूंगा। कि–

भली करी रे मित्रो निज गुरु के मारे मान।
घर की गङ्गा छोड़िकें गये तलैया न्हान॥३६॥

ओहो! यदि यह बात सत्य है? तो महाराज! आप ऐसा समझिए। कि–

गङ्गा हरिद्वार को उलटी बह गई॥ ३७॥
बांस बरेली को उलटे लद गये॥ ३८॥

मैं नहीं जानता कि चौबे लोग जब यज्ञोपवीत के समय आचार्य्य से गायत्री मन्त्र का उपदेश लेलेते हैं तो फिर क्यों वल्लभकुलियों से

श्री कृष्णः शरणं मम॥ ३९॥
क्लीं कृष्णाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा॥ ४०॥

इत्यादि मन्त्रों का उपदेश लेते हैं? क्या वल्लभकुलियों के कृत्रिम=रचित मन्त्र गायत्री मन्त्र से बढ़ कर हैं! जो कि चारों वेदों की माता कहलाती है। यदि आप यह कहें कि लौकिक व्यवहारानुसार गायत्री मन्त्रोपदेश लेने के भी पश्चात् किसी मनुष्य को अवश्य गुरु करना चाहिए तो फिर आप

श्री १०८ योगीराज रज्जू जी महाराज॥
अथवा
श्री१०८ पूज्यपाद वासुदेव जी महाराज॥

को गुरू क्यों नहीं बनाते?

(प्र०) अरे भाई ! तू कुछ समझता नहीं है। केवल अपनी टांय टांय करता है। देख ! अब हम तुझे समझाते हैं। इन दोनों चतुर्वेदाचार्यों को गुरू बनाने से कुछ भी लाभ नहीं होता। और वल्लभकुलियों को गुरू करने से अच्छे अच्छे वस्त्र और स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ प्रसाद के नाम से सदैव मिलते रहते हैं॥ भला अब तू यह तो बतलादे कि इन दोनों कुलों में से श्रेष्ठ कुल कौनसा है ?

(उ०) महाराज कृपानिधे ! मैं क्या बतलाऊं ? आप ही इन दोनों के इतिहासों को पढ़कर छान-बीन करलीजिये ॥

(प्र०) इन दोनों के इतिहास कहां मिलेंगे ?

(उ०) चतुर्वेदियों=माथुरों का इतिहास तो वाराह पुराण के मथुरा महात्म्य नाम खण्ड में मिलेगा और वल्लभ कुलियों का इतिहास महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश के ३६१ से ३६८ तक के पत्रों में पावेगा। यदि आप इस से भी विशेष देखना चाहें तो मिष्टर ब्लाकट साहब रचित "वल्लभकुल इतिहास नाटक" और "वल्लभकुल चारित्र दर्पण" नाम की पुस्तकों को अवलोकन कीजिए ॥

(प्र०) क्योंरे ! तेरी समझ में राज्य-धन खाना कैसा है ?

(उ०) महाराज कृपासिन्धु ! मनुष्य यदि परिश्रम कर के राजा का धन, अकेला धन ही क्या, वरन धन-धान-धना-धरती ले तो सुख पाता है। और यदि बिना श्रम=मिहनत किए प्रतिग्रह के समान लेता है तो कष्ट सहता है और धर्म से भ्रष्ट-धन से नष्ट-काया से निकृष्ट हो जाता है। जैसा कि मनु महाराज ने कहा है—

न राज्ञः प्रतिगृह्णीयादराजन्य प्रसूतितः ॥ ४१ ॥

मनु० अ० ४ । ८४ ॥

अर्थ=क्षत्रियपन के वेदोक्त धर्म कर्म से जो युक्त न हो ऐसे नाममात्र के निकृष्ट राजपुत्र से-

ब्राह्मण प्रतिग्रह=धनादि का दान कभी न लेवे। क्योंकि शास्त्र से विरुद्ध चल के अधर्म करने वाले लोभी स्वार्थी राजा का दान जो ब्राह्मण लेता है वह इन आगे

कहे हुए इक्कीश प्रकार के नरकों नाम दुःख के साधनों को क्रम से प्राप्त होता है। यथा–

यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्र वर्त्तिनः।
सपर्यायेण यातीमान्नरकानेकविंशतिम् ॥ ४२ ॥

मनु० अ० ४ । ८७ ॥

आगे चलकर मनु भगवान फिर कहते हैं कि यह प्रतिग्रह नाना प्रकार के नरकों=दुःखों का हेतु है, ऐसे जाननेवाले विद्वान वेद के जानने वाले और परलोक में कल्याण की इच्छा करने वाले ब्रह्मवादी ब्राह्मण राजा का प्रतिग्रह नहीं लेते। यथा–

एतद्विदन्तो विद्वांसो ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः।
न राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति प्रेत्य श्रेयोऽभिकाङ्क्षिणः ॥ ४३ ॥

मनु० अ० ४ । ९१ ॥

एक स्थान पर मनु जी ने यह भी कहा है कि राजा का अन्न तेज को और शूद्र का अन्न ब्रह्म सम्बन्धी तेज को नाश करता है। यथा–

राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥ ४४ ॥
मनु० अ० ४ । २१८ ॥

इसी का आशय लेते हुए महाराज अत्रि जी और अङ्गिराजी कहते हैं। कि राजा का अन्न तेज् को और शूद्र का अन्न ब्रह्म तेज को हरता है। यथा–

राजान्नं हरते तेजः शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥ ४५ ॥

अत्रिस्मृति श्लोक ३०० और अङ्गिरास्मृति श्लोक ७१ ॥

इसी प्रकार आपस्तम्ब स्मृति अध्याय ९ श्लोक २७ में लिखा है। कि राजा का अन्न बल को और शूद्र का अन्न ब्रह्म तेज को नष्ट करता है। यथा–

राजान्नमोज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥ ४६ ॥

तात्पर्य यह है सब शास्त्रवेत्ताओं ने राजा और शूद्र के अन्न को (प्रतिग्रह को) लेने का निषेध किया है ॥

महाभारत के देखने से प्रतीति होता है कि पिछले समय में सप्त ऋषियों ने और विश्वामित्र ने क्षुधा से अपने प्राणान्त होते हुए जान कर भी राजान्न को बुरा समझ कर ग्रहण नहीं किया था। परन्तु न मालूम आजकल के ब्राह्मण देवों (जोकि केवल नाम मात्र के हैं क्योंकि न सन्ध्या समझते न गायत्री जानते) की क्या कुगति होगी ? जो निर्भयता से राजा का अन्न (प्रतिग्रह) लेकर अपनी उदरदरी में हंसते चले जाते हैं॥

कहीं फट्ट से फट न जावे।
या चट्ट से चटक न जावे॥

चार हज़ार चौबों में विख्यात (एक ही) कविराज श्री मान्यवर चतुर चतुर्वेदी पण्डित नवनीति लालजी महाराज कहते हैं कि दो सौ वर्ष पूर्व चौबे लोग भी अपवित्र भोजन नहीं करते थे। परन्तु जब अपने भाई भतीजों और नाती (बेटी के बेटे) को मरवाने वाले, बाप को कारागार में विश्राम करा के राज सिंहासनारूढ़ होने वाले, हिन्दुओं से डाह करने वाले, हिन्दुओं पर जिज़या जारी करने वाले, अर्थात् मत सम्बन्धी कर लगाने वाले, हिन्दुओं के धर्म के मेलों को बन्द करने वाले, मथुरा में केशवदेव, वृन्दावन में गोविन्ददेव और काशी में विश्वेश्वर और विन्दुमाधव के प्रख्यात मन्दिरों को तोड़ने वाले—अपने दामाद महाराजा छत्रपति शिवाजी से भय खाने वाले—

औरङ्ग यों पछिताय मन, करतो जतन अनेक।
शिवा लेयगो दुरग सब, को जाने निशि एक॥ ४७॥

मुग़ल तैमूरवंशी यवन दिल्लीश्वर नाम औरङ्गजेब बादशाह ने इन को आज्ञा भेजी तो इन चौबों ने भी शास्त्रानुसार उस राजाज्ञा को स्वीकार किया क्योंकि यह लोग राजा और बादशाहों में ईश्वर का अंश समझा करते हैं। यथा—

नराणां च नराधिपं॥ ४८॥ गीता अ० १०। २७॥

और मनु महाराज की भी आज्ञा है कि जब राजा कोई आज्ञा किसी के लाभ वा किसी के हानि के निमित्त देवे तो चाहिये कि कोई मनुष्य उस आज्ञा को उलंघन न करे। यथा—

तस्माद्धर्मं यमिष्टेषु स व्यवस्येन्नराधिपः।
अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु तं धर्मं न विचालयेत् ॥ ४९ ॥
मनु० अ० ७ । १३ ॥

और इसीलिये उस राज्याज्ञानुसार बाज़ार में विश्रामघाट पर दो चार ब्राह्मणों से दाल रोटी के स्थान कचौड़ी आदि पकवान की दूकानें खुलवादीं। बस उसी दिन से कुछ थोड़े से आलसी चौबों में अपवित्र भोजन करने की प्रथा पड़ गई॥

(प्र०) शिवाजी कौन थे?

(उ०) छत्रपति महाराजा शिवाजी भोंसला हिन्दुओं के (यहां आर्य्यों से मतलब है) धर्म विरोधी दिल्ली के बादशाह यवन औरङ्गजेब (जिसे नौरङ्गजेब भी कहते थे) को दबाने वाले और आर्य्यों (हिन्दुओं) के धर्म की रक्षा करने वाले थे। देखिए! महाराजा के सत्य वीरत्व में कविराज भूषणजी ने निम्नलिखित कैसी अच्छी सच्ची कविता की है॥

दोहा।

काल करत कलिकाल में, नहिं तुरकन को काल।
काल करत तुरकान को, सिवसरजा करवाल॥ ५० ॥
सिव औरंगहि जीति सकै, और न राजा राउ।
हत्थि मत्थ पर सिंह बिनु, और न घालै घाउ॥ ५१ ॥

सवैया।

दच्छिन जीति लियो दल के बल पच्छिम जीति कै चामर चाख्यो। रूप गुमान गल्यो गुजरात को सूरत को रस चूसकै चाख्यो॥ पञ्जन पेलि मलेच्छ मले बचे भूषन सोई जो दीन ह्वै भाख्यो। सौरङ्ग है शिवराज बली जिन नौरङ्ग मे रंग एक न राख्यो॥ ५२ ॥

॥ कवित्त ॥

इन्द्र जिमि जंभपर बाड़व सु अंभ पर,
रावण सुदंभ पर रघुकुल राज है।

पौन वारिवाह पर शंभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्र बांह पर राम द्विजराज है ॥
दावा द्रुमदुंड पर चीता मृगझुंड पर,
भूषण वितुंड पर जैसे मृगराज है ।
तेज तिमिरंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों म्लेच्छ वंस पर सेर सिवराज है ॥ ५३ ॥
वेद राख्यो विदित पुरान राख्यो सारसुत,
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर में ।
हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
कांधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गल में ॥
मीड़ राखे मुगल मरोड़ राखे वादशाह,
वैरी पीस राखे वरदान राख्यो कर में ।
राजन की हद्द राखी तेगवल शिवराज,
देव राख्यो देवल स्वधर्म्म राख्यो धार में ॥ ५४ ॥
दारुन दैयत हिरनाकुस विदारवे कों,
भयो नरसिंहरूप तेजु विक्रसार है ।
भूषन भनत त्योंही रावन के मारिवे कों,
रामचन्द्र भयो रघुकुल सिरदार है ॥
कंस के कुटिल बल वंसनि निदरिवे कों,
भयो जदुराय वसुदेव को कुमार है ।
पृथ्वी पुरुहूत साहि के सपूत सिवराज,
म्लेच्छनि के मारिवे कों तेरो अवतार है ॥ ५५ ॥

दोहा

सिव सरजा के बैरु को । यह फल आलमगीर ।
छूटे तेरे गढ़ सबै । कूटे गये उजीर ॥ ५६ ॥

॥ कवित्त ॥

मारकर बादशाही खाक शाही कीन्ही जिन,
जेर कीन्ही जोर सों लै हद्द सब मारे की ।
खिस गई सेखी फिसगई सूरताई सब,
हिसगई हिम्मत हज़ारों लोग प्यारे की ॥
बाजत दमामे लाखों धौंसा आगे धुरजात,
गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़े भारे की ।
दूल्हो शिवराज भयो दच्छनी दमाले वाले,
दिल्ली दुलहिन भई शहर सितारे की ॥ ५७ ॥

अब आप फिर अपने पूर्व प्रकरण पर आजाइये ॥

बहुधा देखने में आता है कि हलवाई लोग शीघ्रता में कचौड़ियों और इमरतियों के लिये उड़द की दाल को भिगोने के स्थान आग पर उबाल लिया करते हैं। और जल्दी में मालपूआ और जलेबी के घोल को गरम पानी से घोल दिया करते हैं। खस्ता कचौड़ी और मठड़ी में तिली के तेल का पुट लगाया करते हैं। साग में सरसों के तेल का चौंक दिया करते हैं। प्रायः पेड़े बर्फियों में मावा=खोआ के स्थान मैदा मिला दिया करते हैं ॥

बहुधा वल्लभकुली मन्दिरों में मुखिया, भीतरिया, बाहरिया, जलघड़िया, रसोइया, सारंगिया, गवैया, बजैया, नचैया, कुदैया, झापटिया, झंझकुटिया, मृदंगची, तबलची और पूजारि आदि सेवकों को वेतन के बदले ठाकुर के प्रसाद (जूठन) की पत्तलें मिला करती हैं। जिन में निखरी और सखरी सब ही प्रकार की खाद्य वस्तुएं होती हैं। सेवक लोग इन प्रसादी पत्तलों को आप नहीं खाते वरन कुछ दाम दमड़े लेकर दूकानदारों को सौंप दिया करते हैं। और यह दूकानदार लोग प्रथम प्रत्येक निखरे सखरे पदार्थ को पृथक पृथक करते हैं। और फिर धीरे धीरे ग्राहकों को बेचा करते हैं। जिन में खीर भी खुले मैदान रक्खी रहती है।

बहुधा हलवाई लोग दूकानों की भट्टियों पर ही अपने खाने के लिये दाल,

भात, खिचड़ी, कढ़ी, रोटी आदि सखरी चीजें बनालेते हैं । और कभी कभी जल-तुरईयां=मछलियां भी भून लेते हैं ॥

बहुधा हलवाई लोग दूधपाग के नाम से बाजारों में अपनी दूकानों पर चामर की खीर भी बनाकर बेचा करते हैं । और उन्हीं दूकानों से अच्छे अच्छे ब्राह्मण पूरी पकवान मोल लेकर खाते हैं । यह खीर एक नई रीति से बनाई जाती है । प्रथम हलवाई चामरों का भात करके रखलेते हैं फिर ग्राहक के कहने पर उस की इच्छानुसार तोल में जितना वह मांगे उसी तोलानुसार दूध, भात और बूरा मिलाकर औंटा लेते हैं । और दूधपाग के नाम से ग्राहक को देदेते हैं ॥

पर न जाने निखरी-सखरी-सागारी-फलाहारी का झगड़ा करने वाले वैष्णव गण और

एकादश्यामन्ने पापानि वसन्ति ॥ ५८ ॥

देखो एकादशी महात्म्य ॥

एकादशी के दिन अन्न में पाप समझने वाले व्रती लोग इस ओर ध्यान क्यों नहीं देते ?

मैंने निज नेत्रों से देखा है कि किन्हीं हलवाइयों की हट्टों पर दूध भरी कढ़ाही में बीसियों मक्खियां गिली मरी पड़ी सड़ा करती हैं । और वह लोग कुछ भी विचार (परवाह) नहीं करते । हां जब किसी ग्राहक को देते हैं तो उन्हें भी निकाल बाहर फेंक देते हैं । चौमासों में रात्रि समय जब हलवाई लोग दूध औंटाते हैं तो दूध की कढ़ाही में सैकड़ों छोटे छोटे जन्तु जा पड़ते हैं । और वह दूध ही में मिल जाते हैं ॥

बहुधा हलवाई लोग दूकानों और खोमचों के दीपक (चिराग़) और लैम्पों को सम्भालने के पश्चात् भी हाथ नहीं धोते और उन्हीं अशुद्ध और दुर्गन्धयुक हाथों से भोज्य पदार्थों में लगादेते हैं ॥

बहुधा हलवाई लोग प्रत्येक जाति से ज्योनारों की बची हुई सामग्री को भी मोल लेकर बेचा करते हैं । जोकि प्रत्येक प्रकार से अशुद्ध होती है ॥

बहुधा हलवाई लोग मिठाइयों में शोभा के लिये महा अशुद्ध विलायती रङ्ग जैसे लाल, गुलाबी, पीला और हरादि मिला दिया करते हैं। कभी २ यह हलवाई लोग धोखा देकर भोले भाले लोगों का धर्म भी बिगाड़ते हैं। जैसे बूंदी (निकती) में मिलाते तो हैं हरा रङ्ग, पर बेचते हैं बूट की बूंदी कह कर। बूट के अर्थ हरा चना॥

बहुधा हलवाई लोग विदेशी चीनी=खांड से मिठाई बनाया करते हैं। और यह विदेशी चीनी गाय और सूअर की हड्डी, मनुष्य के थूक, खून और मूत्र और मरे हुए कोढ़ियों के मांस के मेल से बनती है। देखो हीरालाल गुप्त रुड़की निवासी कृत पुस्तकें जो कि इस विषय पर लिखी गई हैं॥

बहुधा हलवाई लोग अपनी दूकानों में प्रत्येक जात के मनुष्यों को प्रत्येक जाति के मनुष्य की जूंठ में बिठला कर खिलाया करते हैं और चौका का कभी नाम ही नहीं लेते। और उन सब खाने वालों को एक ही लोटे से पानी पिलाया करते हैं किन्तु उस लोटे के मांजने की कभी वारी ही नहीं आती॥

बहुधा हलवाई लोग बड़ी बड़ी ज्योंनारों में भाड़े के बड़े बड़े कड़ाह लाया करते हैं। यह कड़ाह ऐसे अपवित्र होते हैं कि जिन की अपवित्रता ने सातों जातों को एक कूंड़ा-पन्थी बनादिया है। देखिये एक कड़ाह में एक दिन एक कसाई मांस बनाता है। दूसरे दिन एक बनिया उसी में खांड़ गलाता है। तीसरे दिन उसी में एक चमार चामर सिजाता है। चौथे दिन एक ब्राह्मण उसी में दूध औंटाता है। पांचवे दिन एक कोली उसी में दाल रांधता है। छटे दिन एक कूंजड़ा उसी में गोश्त पकाता है। सातवे दिन एक माली उसी में खिचड़ी करता है। आठवे दिन एक चौबा उसी में खीर घोटता है। तात्पर्य्य यह है कि सातों जात के मनुष्य चौबे से लेकर चमार तक एक ही कड़ाह में अपना भोजन तय्यार कर लेते हैं। बाहर की ओर से तो इन को कोई मांजता ही नहीं क्योंकि काले २ पपटा ऐसे जमे रहते हैं कि जिन का छुड़ाना एक बड़ा कठिन काम है और ऐसे कठिन कार्य्य को कर के कोई कष्ट उठाना भी नहीं चाहता। इसीलिए कह दिया करते हैं कि भाई यह कड़ाह रात दिन आंच पर चढ़ा करते हैं इस से ये सदैव शुद्ध होते हैं और भाई ऐसे बड़े यज्ञों में ऐसी छोटीसी अशुद्धता का विचार नहीं किया करते और भीतर की अलङ्ग से इन कड़ाहों के मांजने की कोई आवश्यकता ही नहीं

पड़ता क्योंकि भैरव जी के वाहन पहिले ही से चाट चूटकर साफ़ कर देते हैं यदि उनकी की हुई सफ़ाई पर कोई शक पैदा हुआ तो मजदूर से, जोकि कड़ाह को उठाकर लाता है, एक हाथ दिवा दिया करते हैं। न मालूम मेरे प्यारे वैष्णव भाई, लकड़ियों को धोकर जलाने वाले, पेड़ों को छील कर खाने वाले, आकाश में धोती सुखाने वाले, एड़ी उचका कर और धोती दुपट्टा समेट कर मार्ग में चाल चलने वाले और चलने में कमर तिरछी करके दूसरों से बचने वाले इन महा अपवित्र कड़ाहों की ओर ध्यान क्यों नहीं धरते ? अपनी जात के लिये एक २ आने का चन्दा करके २५०) ढाई सौ रुपये इकट्ठा कर कुछ थोड़े से कड़ाह क्यों नहीं बनवा लेते ? जिस से एक तो अपनी जाति का धर्म बचा रहे और दूसरे अपने लोगों का गौरव बढ़े ॥

प्यारे भाइयो ! धन के लोभ से धर्म्म को न त्यागो । स्मरण रक्खो, यदि आप धर्म्म को ग्रहण कर लोगे तो अर्थ और काम आप से आप आप के पास आ खड़े होवेंगे। किसी कवि ने सत्य कहा है—

धर्म्म तत्व कहं समुझि मनुज जे, साधत कहुं न थकाहीं ।
अर्थ काम नहिं तिनहिं त्यागि सक, ज्यों तन कहं परछाहीं ॥
जहां धर्म्म तहं अर्थ कामहू, वसत आय अति नेरे ।
ज्यों सुगन्ध मकरन्द सुमन कहं, रहत सदा हीं घेरे ॥ ५९ ॥

बहुधा किन्हीं किन्हीं मनुष्यों की समझ है कि बिना धन के धर्म नहीं होता। यथा—

बिना अर्थ त्यौं धर्म्म सधै नहिं—कौनहु बनै न कामा ।
भोजन के बिन पुषै न जैसे—जीव देह अभिरामा ॥ ६० ॥

किन्तु आप इस को भली भांति निश्चय करके समझना कि धन की जड़ भी धर्म ही है अर्थात् धर्म के बिना धन कदापि नहीं ठहर सक्ता। यथा—

अर्थ बहुलता निश्चय ही है—धर्म काम की नैया ।
पै बिन साधै धर्म्म काम के—चलि न सकै वह भैया ॥६१॥

बहुधा हलवाई लोग हिन्दू धर्म्मानुसार सूतक पातक का भी कुछ विचार नहीं करते । देखने में आता है कि हलवाई लोग मृत्यु दिवस से तीसरे दिन "उठावनी" कर के दूकान खोल लेते हैं । और पूरी, कचौड़ी, दूध, दही, साग आदि पकवान बना कर बेचने लग जाते हैं । ये लोग केवल दो रात का मृतक मानते हैं परन्तु हिन्दू धर्मशास्त्रानुसार मनुष्य १० रात्रि व्यतीत होने पर शुद्ध होता है । यथा—

प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्धयति ॥ ६२ ॥

मनु० अ० ५ । ६५ ॥

न जाने रात दिन हिन्दू धर्म शास्त्रों को सुनने और सुनाने वाले, भगतजी और पण्डित गुरूजी कहलाने वाले इन सूतकी हलवाइयों के हाथ का भोजन क्यों किया करते हैं ? हिन्दू ही जो ठहरे, गुड़ खांय गुलगुलों की आन करैं ॥

बहुधा हलवाई लोग साग भाजियों में हल्दी गेरा करते हैं जिस से वह सखरी हो जातीं हैं ॥

(प्र०) सखरी हो जातीं हैं तो हो जाने दे । तुझे क्या ? चौबे लोग तो हल्दी को सखरी नहीं मानते ॥

(उ०) अजी महाराज दीनबन्धु ! चौबे लोग सखरी नहीं मानते तो क्या ? कुलीन लोग तो हल्दी को सखरी मानते हैं ॥

(प्र०) क्या चौबे और कुलीन एक नहीं हैं ? क्या वह अलग २ हैं ?

(उ०) इस का तो उत्तर मैं अभी देना नहीं चाहता । परन्तु इतना मैं अवश्य कहना चाहता हूं कि यमुना पुत्रों और कुलीनों के चाल—चलन, आहार—व्यवहार, और रोज़गार में रात दिन का फ़र्क़ है । जिस को दोनों समुदाय में से प्रत्येक जन अपने मन में भली भांति जानता है । निश्चय है कि अष्टादश पुराणों की कथाओं की महिमा कहने वाले और अक्कल के वक्कल से बाल की खाल निकालें गरुड़ पुराण की गाथा गाने वाले श्रीमान् चतुर्वेदी पण्डित गयादत्तजी शर्म्मा काव्यतीर्थ इन दोनों थोकों की पृथकता को भिन्न भिन्न कर के समझा देवेंगे ॥

(प्र०) अरे भाई ! काव्यतीर्थ जी तो जब कहेंगे तब कहेंगे देखा जायगा। पर अब तो तू इस समय इन का कुछ थोड़ा ही सा भेद (अन्तर=फ़र्क़) बतलादे ॥

(उ०) अच्छा महाराज ! इस काल में कुछ कहना तो नहीं चाहता था किन्तु अब आप के कहने से कुछ कहे देता हूं । सुनिये ! इन दोनों थोकों के विवाह संस्कारों में ही रात दिवस और पृथ्वी आकाश का सा भेद है ॥

यमुना पुत्रों में पुत्री ऐसे बड़े वर से व्याही जाती है कि जिस को देख कर एक विद्वान् ने कहा है कि "वाह भाई वाह ! देखो, इतने बड़े ऊंट की पूंछ से कैसी छोटी सी एक गिलहरी बांधी गई है" ॥

कुलीनों में लड़की ऐसे छोटे वर से विवाही जाती है कि जिस के लिये एक विद्वान् प्रार्थना करता है—

तजौ कुढङ्गी चाल बाल व्याहन ते रोको ।
शिशु कुरङ्ग को बांधि सिंहिनी पै नहीं झोंको ॥ ६३ ॥
बाल व्याह अनरीति ताहि तजि रीति सुधारो ।
मृगछौने को हाय ! सिंहिनी गोद न डारो ॥ ६४ ॥

साथ ही साथ मैं आप को इस विषय पर दो इतिहास भी और सुनाये देता हूं ॥

१=बहुत दिनों की बात है एक बेर अनुमान ६० वर्ष की आयु के एक यमुना पुत्र जी एक छोटी सी छोरी को, जो कि लगभग तीन वर्ष के थी, निज कन्धे पर बिठला कर रामलीला दिखाने को लेगये । क्योंकि चौबे जी उस समय में अपने वंश में आप ही एक अकेले रह गये थे । और और कोई समीपी सम्बन्धी न था । रावण फुकने के समय लड़की रोने लगी । लड़की को रोते हुए देख कर एक भले मनुष्य ने कहा कि "चौबे जी महाराज ! अपनी पुत्री को पुचकार लो और कन्धे से उतार कर गोद में लेलो । बिचारी आतिशबाजी की आवाज़ से खौफ़ खाती है" । यह सुनते ही चौबे जी क्रोधान्ध होकर लाल लाल आंखें दिखा कर बोले "क्योंरे सुसरी रांड़ के ! तू कैसें बोलै है ? का तोय कछू दीखे नांयने ? अरे सुसरे ! जा कों तू हमारी छोरी बतावे है। अरे बिड़चोद ! जे हमारी पुत्री=बेटी

नांयने। अरे! ज तो हमारे ससुर की बेटी है। अबे! हम तो जा के खसम हैं।" भला मनुष्य बोला, महाराज चौंबे जी! कसूर मांफ करियेगा, मैंने तो आप को इस लड़की का बाबा या नाना जाना था। यह सुनते ही सब तमाशे वाले खिल खिला कर हंस पड़े और कहने लगे "ओ! पुत्री के बाबा"। "ओ! छोरी के नाना"। "अरे बेटी के बाप" इत्यादि अन्त को चौंबे जी भी हंस कर वहां से खिसक दिये और घर को चल पड़े और फिर रास्ते में कहीं न अड़े और किसी से न लड़े॥

२—जयपुर में एक समय संक्रांति के ऊपर एक कुलीन के लड़के ने एक मुसलमान के लड़के की पतङ्ग तोड़दी मुसलमान का लड़का कुलीन के घर पर आया और सामने एक लम्बी मोटी पचहत्थी औरत को खड़ी हुई देख कर उलाहना देने लगा कि "अजी मा जी! थां को छोरो म्हां को कनखो ले लियो छै, सो म्हां को देदेउ" मुसलमान के लड़के के उक्त वचनों को सुन कर घर पर के सब लोग हँस उठे। क्यों हँसे? इस लिये कि मुसलमान के लड़के ने जिस स्त्री को कुलीन के लड़के की माता जाना था। वह उस लड़के की माता नहीं थी। किन्तु उस की बहू अर्थात् लुगाई थी। जैसे सब लोग हँसे थे वैसे ही वह बहू बिचारी रोई थी। क्यों रोई थी? इन कुलीनों की कुरीतियों को देख कर और यमुना पुत्रों की कुप्रथाओं को सुन कर॥

क्या मथुरा वाले चार हज़ार माथुरों की माथुर सभा के महामन्त्री श्री मान्यवर चतुर्वेदी पण्डित श्री नटवर लाल जी महाराज मिहारी सर्दार, आर्य्यभिषक्, गोभक्त, स्वदेश हितकारी, निज जात्योन्नतिकारी, सुप्रबन्धकारक, कुप्रथानाशक, इन कुरीतियों का कुछ प्रबन्ध न करेंगे?

अजी महामन्त्री जी महाराज! स्मरण रखना, यदि आप लोगों ने इन कुसंस्कारों का कुछ संशोधन न किया तो एक दिवस ऐसा आवेगा कि जब यह पवित्र और श्रेष्ठ जात किसी गहरे गड्हे में गड़ी पड़ी दृष्टि पड़ेगी। यह वही उत्तमोत्तम जात है जो कि एक दिन हिमालय पर्वत की उच्च से उच्च चोटी पर चढ़ी हुई थी और खिसकते खिसकते आज उसी पर्वत के पदों पर आपड़ी हुई है और अब यहां (पदोंपर) भी उस के ठहरने का कोई लक्षण दिखलाई नहीं देता॥

बाज़ारू भोजन की अपवित्रता के विषय में मैंने प्राचीन मनुष्यों से बहुत से इतिहास सुने हैं। जिन में से एक—दो आप को भी सुनाये देता हूं॥

१ इतिहास ।

एक दिन एक पण्डित जमुना स्नान के लिये विश्राम घाट पर जा रहे थे। जब आप बाज़ार की सीढ़ियों पर पहुंचे तो देखते हैं कि एक हलवाई की दूसरी दूकान पर दूध से भरा हुआ एक टोकना (पीतल का बर्तन) धरा हुआ है। और उस में भैरव-वाहन जी टांग उठा कर अपने पेट का पानी गिरा रहे हैं। और टोकना के पय जी उस पेट के पानी को, जो कि पहिले पवित्र जमना जल था, प्रेम पूर्वक अपने रूप, रस और गुण में शीघ्रता से मिला रहे हैं जिस से कोई उन के परम प्रेमी मित्र को पहचान न लेवै। पय और पानी की प्रीति सारे संसार में प्रख्यात है। यह कौतुक देख कर उक्त पण्डित जी ने हलवाई से कहा "रे बनिये के! तो कों कछू दूध के टोकना को हू ख़बर है? देख! जा सुसरे कारे कुत्ता ने जा दूध में मूत दियो है" हलवाई बोला "अच्छा महाराज! का डर है जा दूधे मैं फैंक दोंगो" यह कहते हुये हलवाई दूध को भीतर ले गया। पण्डित जी चतुर थे समझ गये कि हलवाई दूध न फैंकेगा। बस उसी समय से पण्डित जी ने बाज़ार का भोजन छोड़ दिया। धन्य है ऐसे धर्मात्मा पुरुष को। ऐसों से ही धर्मोन्नति होती है॥

२ इतिहास ।

एक समय दिल्ली में एक साहूकार के भंगी को बहुत जूठन मिली। उस ने एक हलवाई को बेच दी! हलवाई ने ख़ोमचे वालों को मोल दे दी! ख़ोमचे वालों ने शहर में बेची। एक ख़ोमचे वाले की एक भंगी से तकरार हो गई। भंगी ने हल्ला मचा दिया। "अरे इस ने भंगी की जूंठ बेचकर सब हिन्दू मुसलमानों का धर्म बिगाड़ दिया"। सारे शहर में शोर मच गया, और एक बड़ी भारी पञ्चायत हुई॥

बस इन्हीं बातों को सोचते विचारते मेरा जी बाज़ार के अपवित्र भोजनों से हट गया है। और इसीलिये मैंने अशुद्ध भोजन को उच्छिष्ट=जूंठन में बैठ कर न (नहीं) खाने का व्रत धारण कर लिया है। और ईश्वर पर पूरा भरोसा रख लिया है। कि वही जगदाधार मेरे प्रण को पूर्ण करने वाला है॥

ईश भरोसा भारी॥ ६५॥

(प्र०) अरे भाई! हमने सुना है कि आर्य्य समाज में खान पान का कुछ भी विचार नहीं किया जाता॥

(उ०) महाराज ! आप से किसी जूंठ खाने वाले और झूंठ बोलने वाले झूंठे ने झूंठ कह दिया होगा । देखिये !

१.= श्रीमान् पं० भगवानदीन जी प्रधान आर्य्यप्रतिनिधि सभा संयुक्तप्रदेश ।
२= ” ” कृष्णलाल ” ” आर्य्यसमाज मथुरा ।
३= ” ” बाबूराम ” आचार्य्य मुड़सान निवासी ।
४= ” ” नन्दकिशोर ” देवशर्म्मा कान्यकुब्ज
५= ” ” प्रयागदत्त ” ” ” } यह दोनों आर्य्य

धर्म्मोपदेशक हैं । यह सब लोग और इन के अतिरिक्त और भी अनेक भद्र पुरुष हैं जो बाजारी अपवित्र भोजन नहीं करते । (प्र०) अरे भाई ! तूने इन भले लोगों का तो नाम बतादिया और निश्चय है कि और भी सहस्रों मनुष्यों का नाम बतला देगा । किन्तु हमारे कथन का मथन तो कुछ और ही है । (उ०) अच्छा महाराज ! तो अब आप अपना वह प्रयोजन भी कहियेगा । (प्र०) अरे भाई ! दयानन्द ने तो खान-पान का कुछ भी विचार नहीं माना । (उ०) महाराज ! आपने अब तक महर्षि दयानन्द जी के विचारों को नहीं सुना । यदि सुनते तो ऐसा न कहते । अच्छा अब आप ध्यान दे कर सुनिये। **महर्षि दयानन्द जी** खान-पान की शुद्धता के विषय में कहते हैं । कि-

१.=(मनुष्य) नित्य स्नान, वस्त्र, अन्न, पान, स्थान, सब शुद्ध रक्खे क्योंकि इन के शुद्ध होने में चित्त की शुद्धि और आरोग्यता प्राप्त होकर पुरुषार्थ बढ़ता है ॥ देखो सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ संस्करण पृष्ठ २६२ पंक्ति २७ ॥

२=जहां भोजन करें उस स्थान को धोने, लेपन करने, झाड़ू लगाने, कूरा कर्कट दूर करने में प्रयत्न अवश्य करना चाहिये ॥ देखो स० प्र० पृ० २६५ पं० २६॥

३=(चौका को) प्रतिदिन गोबर मिट्टी झाड़ू से सर्वथा शुद्ध रखना और जो पक्का मकान हो तो जल से धोकर शुद्ध रखना चाहिये ॥ देखो सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २७० पं० २१ ॥

४=जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने वाले हैं उन उन का सर्वथा त्याग करना ॥ देखो स० प्र० पृ० २६९ पं० ३ ॥

५=बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते ॥ ६६ ॥
शारङ्गधर । अ० ४ । २१ ॥

जो २ बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं उन का सेवन कभी न करें और जितने अन्न सड़े, बिगड़े, दुर्गन्धादि से दूषित, अच्छे प्रकार न बने हुए और मद्य मांसाहारी म्लेच्छ कि जिन का शरीर मद्यमांस के परमाणुओं ही से पूरित है उन के हाथ का न खावें ॥ देखो स० प्र० पृ० २६७ पं० २० ॥

६=(एक साथ खाने में) दोष है, क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती जैसे कुष्ठी आदि के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का भी रुधिर बिगड़ जाता है वैसे दूसरे के साथ खाने में भी कुछ बिगाड़ ही होता है सुधार नहीं ॥

देखो सत्यार्थप्रकाश पृ० २६८ पं० ६ ॥

७=इसलिये मनुष्यमात्र को उचित है कि किसी का उच्छिष्ट अर्थात् जूंठा न खाय ॥ देखो सत्यार्थप्रकाश पृ० २६९ पं० २८ ॥

८=नहीं (स्त्री पुरुष को भी परस्पर उच्छिष्ट न खाना चाहिये) क्योंकि उन के भी शरीरों का स्वभाव भिन्न भिन्न है ॥ देखो स० प्र० पृ० २६९ पं० २६ । इसी प्रकार मनु महाराज ने भी कहा है कि पुरुष अपनी स्त्री के साथ एक पात्र में भोजन न करें । यथा—

नाश्नीयाद् भार्य्या सार्द्धं ॥ ६७ ॥ मनु० अ० ४ । ४३ ॥

एक मनुष्य ने कहा कि गुरू की जूंठन तो अवश्य खाना चाहिये । यथा—

गुरोरुच्छिष्ट भोजनम् ॥ ६८ ॥

महर्षि ने उत्तर दिया—

९=इस का यह अर्थ है कि गुरू के भोजन किये पश्चात् जो पृथक् अन्न शुद्ध स्थित है उस का भोजन करना अर्थात् गुरू को प्रथम भोजन करा के पश्चात् शिष्य को भोजन करना चाहिये (न कि गुरू की जूंठन खाना चाहिये) ॥ देखो सत्यार्थप्रकाश पृ० २६९ पं० १९ ॥

फिर एक ने प्रश्न किया कि जो उच्छिष्ट मात्र का निषेध है तो बछड़े का उच्छिष्ट दूध भी न पीना चाहिये ॥

इस पर महर्षि ने कहा कि—

१०=बछड़ा अपनी मा के बाहिर का दूध पीता है भीतर के दूध को नहीं

पी सक्ता इस लिये उच्छिष्ट नहीं परन्तु बछड़े के पीये पश्चात् जल से उस की मा के स्तन धोकर शुद्ध पात्र में दोहना चाहिये ॥ देखो स० प्र० पृ० २६९ पं० २१ ॥

(प्र०) मनुष्यमात्र के हाथ की की हुई रसोई के खाने में क्या दोष है ? इस के उत्तर में महर्षि ने कहा—

११=(मनुष्यमात्र के हाथ की पकी हुई रसोई के खाने में) दोष है, क्योंकि जिन उत्तम पदार्थों के खाने पीने से ब्राह्मण और ब्राह्मणी के शरीर में दुर्गन्धादि दोष रहित रज वीर्य्य उत्पन्न होता है वैसा चांडाल और चांडाली के शरीर में नहीं क्योंकि चांडाल का शरीर दुर्गंध के परमाणुओं से भरा हुआ होता है वैसा ब्राह्मणादि वर्णों का नहीं इसलिये ब्राह्मणादि उत्तम वर्णों के हाथ का खाना और चांडालादि नीच भंगी चमार आदि का न खाना (चाहिये) ॥ देखो स० प्र० पृ० २७० पं० २ ॥ इसी प्रकार महर्षि ने भागलपुर–बंगाल में स्कूल के हेडमास्टर से, जो कि बङ्गाली ब्रह्मो थे, कहा है । कि—

१२=सब जहान के लोगों के साथ खाना ठीक नहीं । और चारों वरन भी एक नहीं ॥ देखो श्रीमान्वर पण्डित लेखराम कृत महर्षि जीवन चरित्र पृ० १९३ पं० ४

श्री महाराज ! अब तो आप भली भांति समझ गये होंगे कि आर्य्य समाज में महर्षि ने कैसी सुन्दर शुद्धता के साथ पवित्र भोजन करने की आज्ञा दी है । मेरी समझ में तो खान-पान की पवित्रता जैसी आर्य्य समाज के सिद्धान्तों में पाई जाती है वैसी और किसी मत (मजहब) में दिखलाई नहीं देती । किरानी और कुरानियों का तो कहना ही क्या है परन्तु पुरानियों में भी खान-पान के विषय में शुद्धता के स्थान महा अशुद्धता के नियम बने हुए हैं । इसी लिये कहना पड़ता है । कि—

वाहरे आर्य्य धर्म्म के विरोधी हिन्दू धर्म्म ! धन्य है तुझ को कि तूने उच्छिष्ट खाने की उमंग में शुद्धता की कुछ भी सुधि न ली और ऐसी मिथ्या प्रथा प्रचलित करदी कि जिस का पारावार ही नहीं पाया जाता । और यही कारण है कि स्त्री को पति की, चेले को गुरु की और भले २ उच्च घरानों की बहू बेटियों को शिष्या=चेली बन कर गोसांई जी व बाबाजी की जूठन खानी-पीनी पड़ती है । चाहे उन्हें रुचै पचै चाहे न रुचै पचै । देखो राधास्वामी मतवालों के "वचन सारे" नामक ग्रंथ में लिखा है—

पीक दान ले पीक करावे ।
सो सब पीक आप पी जावे ॥ ६९ ॥

अर्थात् सब चेला चेली मिल कर गुरु की पीक पीवें ॥ रामस्नेहियों की एक शाखा के मनुष्य साधुओं की जूठन खाते हैं । साधुओं के चरण धो के पीते हैं । और जब गुरू से चेला दूर जावे तो गुरू के नख और डाढ़ी के बाल अपने पास रख लेवे और उस का चरणामृत नित्य लेवे । ऐसा नियम है ॥ देखो सत्यार्थप्रकाश पृ० ३६०–३६१ ॥

(प्र०) वाह बड़े भले आदमियों का नाम लिया, कि जिन के हाथ का छूवा हुआ पानी तक भी कोई हिन्दू नहीं पीता ॥

(उ०) क्या तुम कह सक्ते हो ? कि यह लोग हिन्दू नहीं हैं ? अस्तु, इन को रहने दो । अब आप यह कहो, वल्लभकुली हिन्दू हैं या नहीं ?

(प्र०) हैं ! हैं !! यह क्या कहते हो ? वल्लभवंशी तो हमारे पूज्यमान और हिन्दू धर्म के स्तम्भ हैं ॥

(उ०) तो महाराज ! वही लोग (वल्लभकुली) अधिकता से अपनी जूठन खिलाते पिलाते हैं । देखिये ! जब केशरिया स्नान अर्थात् गोसाईं जी के शरीर पर स्त्री लोग केसर का उपटना कर के फिर एक बड़े पात्र में पट्टा रख के गोसाईंजी को स्त्री पुरुष मिल के स्नान कराते हैं परन्तु विशेष स्त्री जन स्नान कराती हैं पुनः जब गोसाईं जी पीताम्बर पहिर और खड़ाऊं पर चढ़ बाहर निकल आते हैं और धोती उसी में पटक देते हैं फिर उस जल का आचमन उस के सेवक करते हैं और अच्छे मसाला धर के पान बीड़ी गुसाईं जी को देते हैं वह चाब कर कुछ निगल जाते हैं शेष एक चांदी के कटोरे में जिस को उन का सेवक मुख के आगे कर देता है उस में पीक उगल देते हैं उस की भी प्रसादी बटती है जिस को "खास" प्रसादी कहते हैं ॥ देखो स० प्र० पृ० ३६८ पं० ५ ॥

इस की पुष्टि में मिष्टर ब्लाकट साहब ने कहा है ।

शेर—हैं खिलाते जूठ सब को और ये मुंह का उगाल ।
बांध के दमड़ी की कंठी छीन लेते हैं ये माल ॥
हैं सफा ऊपर से ये औ चाल चलते हैं कुचाल ।
खूब ठगते चेलियों को डार कर बातों के जाल ॥७०॥

देखो वल्लभकुल चरित्रदर्पण पृ० ४३ पं० २० ॥

मिष्टर क्लाकर साहब ने इतना कह कर ही मौन धारण नहीं किया है किन्तु आगे चल कर इन की अशुद्धता का और भी परिचय दिया है। सुनिये!

कवित्त—झाड़े हैं के बाहिर गुसांई जी पधारें जबै चेला और चेली सब तहां बैठे आन हैं। हाथन में जल कछू शेष बचजात ताहि छिड़कै सब ऊपर जो अशुचि महान है॥ सौंच शेष जल को सु चर्णामृत तुल्य अहो धर्म के विरुद्ध करें हियो न सकान है। पूछैं हम ताको प्रभु उत्तर बनाय दीजे इनहू सब बातन में वेद को प्रमान है॥ ७१॥

गुरु के शरीर मांहि ऊपर के अङ्गन ते नीचे के अङ्ग सो तो अति अशुचिमान है। जूंठी ही दतौन की प्रसाद महा भाषत है सवक लगाय आये राखत ज्यों प्रान है॥ याहीतैं चेली तज ऊपर के अंगन को नीचे के अंगन को राखैं उर ध्यान है। पूछैं हम ताको प्रभु उत्तर बताय दीजे इनहू सब बातन में वेद को प्रमान है॥७२॥

गुप्त स्थान के सुखूड़ केश चेलन को देत कहैं की जो यन्त्र उत्तम महान है। सोने सों मढ़ाय पहिराय दीजो कंठ मांहि भूत प्रेत भागत न लागत मसान है॥बाधा भग जायगी भवन की तुम्हारी कहा पार और परोक्षिम को सुखद बखान है। पूछैं हम ताको प्रभु उत्तर बताय दीजे इनहू सब बातन में वेद को प्रमान है॥७३॥

देखो वल्लभकुल इतिहास नाटक पृ० ७५—७६ कवित्त संख्या ४-५-६॥

हिन्दू धर्म ने इतने पर ही सन्तोष नहीं किया, बरन आगे चल कर एक जनरैल आरडर (व्यवस्था) देदिया है कि उड़ीसा वाले जगन्नाथ जी के मन्दिर में ब्राह्मण को भी सात जात की उच्छिष्ट खाने से नकार न करना चाहिये। यदि कोई नकार=इन्कार करेगा तो वह कोढ़ी या अन्धा या काणा या बहरा या गूंगा या नकटा या टोंटा या लूला या लंगड़ा या लुंजा या और कोई किसी प्रकार से अङ्गहीन हो जायगा। इसीलिये उच्छिष्ट खाने के विषय में वहां की अद्भुत लीला को देख कर एक विद्वान् ने कैसा अच्छा सच्चा वाक्य कहा है। यथा—

जगन्नाथ के धाम में, लखौ अनोखी बात ।
अति शूद्रन जूंठो कियो, भखे विप्र गत्र भात ॥७५॥

हिन्दू धर्म ने जूंठन के नाम भी अलग २ रख छोड़े हैं । यथा—प्रसादी, महाप्रसादी, खास प्रसादी, उत्तम प्रसादी, ठाकुरजी की प्रसादी, गोंसाईं जी की प्रसादी, महाप्रभू जी की प्रसादी, जमना जी की प्रसादी, अमनिया प्रसादी, समर्पणी प्रसादी, ब्रह्म सम्बन्धी प्रसादी इत्यादि कहां तक गिनाऊं ॥

हिन्दू धर्म ने प्रसाद पाने=जूंठन खाने के माहात्म्य भी बहुत से लिख रक्खे हैं जिन को यहां स्थानाभाव से नहीं लिखा ॥

किसी किसी हिन्दू पुरोहित (गुरू) ने अपनी जूंठन देने, अपने पास बैठने, अपने शरीर को छुवाने आदि बातों पर कर=टैक्स=महसूल भी बांध रक्खा है । यथा—

जो भगत जी पुरोहित जी की ज़ियारत (यात्रा=दर्शन) करना चाहें तो ५) रु० । हाथ लगाना चाहें तो २०) रु० । पांव धोना चाहें तो ३५) रु० । हिंडोला झुलाना चाहें तो ४०) रु० । मालिस करना चाहें तो ४२) रु० । पास बैठना चाहें तो ६०) रु० । खास कमरे में जाना चाहें तो ५०) से ५००) रु० तक । साथ नाचना चाहें तो १००) से २००) रु० तक । थूक चाटना चाहें तो तो १८) रु० । मैली धोती के धोवन या निचोड़न को पीना चाहें तो १७) रुपये देवे ॥

देखो—सद्धर्मप्रचारक वर्ष १७ अङ्क २९ पेज ४ कालम ३ ॥

(प्र०) हमने सुना है कि आर्य्य लोग समझते हैं कि खान पान के एक होने से उन्नति और सुधार होता है ॥

(उ०) नहीं, आर्य्य लोग ऐसा नहीं समझते, महाराज ! कृपा करके इस विषय पर आप महर्षि के निम्न लिखित वाक्य को पढ़ लीजिये—

१३—जब तक एक मन, एक हानि लाभ, एक सुख दुःख, परस्पर न मानें तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है । परन्तु केवल खाना पीना ही एक होने से सुधार

नहीं हो सकता किन्तु जब तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते तब तक बढ़ती के बदले हानि होती है ॥ देखो स० प्र० पृ० २६६ पं० २१ ॥

(प्र०) हम समझते हैं कि एक साथ अर्थात् एक संगति और एक पंगति में बैठ कर भोजन करने से मित्रता बढ़ती है और शत्रुता घटती है ॥

(उ०) नहीं महाराज ! आप की यह समझ ठीक नहीं है । देखिए ! कौरव-पाण्डव और यादव, यह तीनों थोक आपस में एक साथ भोजन किया करते थे। परन्तु फिर भी इन लोगों ने ऐसा घोर संग्राम किया कि जिस के मारे सारा भारत गारत हो गया और वह महान् युद्ध महाभारत के नाम से सारे भूमण्डल में अब तक विख्यात हो रहा है ॥

ईसाई लोग एक साथ एक मेज पर बैठ कर खाते हैं परन्तु उन में भी प्रेम नहीं पाया जाता । रोमन कैथलिक और प्रोटेस्टेंटों ने आपस में एक दूसरे के सहस्रों मनुष्यों को कतल कर डाला । देखो क्रिश्चियन मत दर्पण । और जरमन और फ्रांस का संग्राम तो अभी, थोड़े दिन हुए, हुआ है । और रूस में आजकल एक दूसरे को बध कर रहा है ॥

एक थाली में खाने वाले मुसलमान भाइयों में सुन्नी और शिया सदैव आपस में झगड़ते ही रहते हैं । आज कल भी लखनऊ में लड़ रहे हैं । देखो आ० मि० ता० १६-४-०७ का सफा ३ कालम ६ । यदि आप को इन मुहम्मदी भाइयों के आपस में बड़े २ युद्धों का वृत्तान्त जानना है तो दिल्ली के बादशाही समय का इतिहास पढ़िये ॥

मथुरा के सब चौबे एक संगति से एक पंगति में भोजन किया करते हैं। परन्तु उन में स्नेह, प्यार, प्रेम, प्रीति, प्रणय, मेल, मिलाप, मैत्री, मित्रता, दोस्ती, मुहब्बत और लव (मन में भावे जो कहो) लेशमात्र को भी नहीं पाई जाती । इस के न होने का यही एक बड़ा भारी प्रमाण है, कि इसी एक छोटे से मथुरा नगर में इन की संख्या चार हजार होते हुए भी इन में से म्यूनीसिपेलेटी (चुङ्गी) का एक भी मेम्बर नहीं है । यह लोग अपनी परम पूज्य माता श्री जमना जी के परमपवित्र स्थान विश्रामघाट का भी प्रबन्ध नहीं कर सकते जो कि एक छोटासा कार्य है ॥

पञ्जाब के प्रख्यात नगर अमृतसर में एक समय पादरी क्लार्क साहब ने महर्षि से कहा कि "हम और आप एक मेज पर खाना खावें" ॥

महर्षि दयानन्द जी ने उत्तर दिया। "इस से फायदा क्या होगा?" पादरी साहब ने कहा। "इस से दोस्ती बढ़ेगी"

महर्षि दयानन्द जी ने कहा—

१४—सुन्नी और शिया मुसलमान, व रूसी व इङ्गलैण्ड वाले एक बर्तन में खालेते हैं और तुम और रोमन कैथोलिक एक मेज पर खालेते हो पर दिल से एक दूसरे के दुश्मन हो फिर आप की सिर्फ मेज पर खाने से हमारी दूसरे धर्म वालों से किस तरह दोस्ती हो सकी है?

यह सुन कर पादरी साहब लाजवाब होगये ॥ देखो धर्मवीर पंडित लेखराम कृत महर्षि दयानन्द जीवन चरित्र पन्ना ३३२ लाइन ५ ॥

श्रीमान् महात्मा मुन्शीराम जी मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी—हरिद्वार के बचनों से भी सिद्ध होता है कि एक साथ भोजन करने से प्रेम नहीं बढ़ता। महात्मा जी कहते हैं—

हिन्दू मुसलमानों के मेल के लिये जहां आनरेबल गोखले से महानुभाव काम कर रहे हैं वहां यह सुन कर मुझे प्रसन्नता हुई है कि लाहौर में एक मुसलमानी देवी के निमन्त्रण पर सर्दारनी उमराव सिंह मजीठिया तथा श्रीमती हरदेवी जी तथा बहुतसी मुसलमानी शरीफ बीबियां इकट्ठी हुईं और उन्हों ने इकट्ठे मिल कर भोजन किया। इस से समझा जाता है कि दोनों समाजों में परस्पर प्रेम बढ़ेगा ....सम्भव है कि इन विधियों से कुछ दिखलावे का मेल होजावे, किन्तु वास्तविक मेल की विधि कुछ अन्य ही है ॥ देखो सद्धर्म प्रचारक भाग १८ संख्या ४८ पेज ८ कालम १। (दिखलावे का मेल) अर्थ (मिथ्या मेल) तात्पर्य यह है कि एक साथ खाना खाने से झूंठा मेल भले ही हो जावे पर सच्चा मेल मिलाप नहीं हो सका ॥

(प्र०) हम से एक आर्य्य ने कहा था कि "सब के हाथ का खाना खाना चाहिये क्योंके ऐसा करने से बढ़ती होती है" ॥

(उ०) महाराज ! आप से आर्य्य ने तो ऐसा कदापि नहीं कहा होगा पर हाँ किसी अनार्य्य ने अवश्य कह दिया होगा । देखिये ! सत्यार्थ प्रकाश पृ० ३७८ में एक निषय इसी विषय पर प्रश्नोत्तर में निम्न प्रकार लिखा हुआ है । ब्रह्म समाजी प्रश्न करता है, देखो ! युरोपियन् लोग कोट, बूट, पतलून पहरते होटल में सब के हाथ का खाते हैं इसीलिये अपनी बढ़ती करते जाते हैं । इस के उत्तर में महर्षि कहते हैं—

१५=यह तुम्हारी भूल है क्योंकि मुसलमान अन्त्यज लोग सब के हाथ का खाते हैं पुनः उन की उन्नति क्यों नहीं होती ? जो युरोपियनों में बाल्यावस्था में विवाह न करना, लड़का लड़की को विद्या सुशिक्षा करना कराना, स्वयम्बर विवाह होना, बुरे २ आदमियों का उपदेश नहीं होना,.......................अपने देश वालों को व्यापार आदि में सहाय देते हैं इत्यादि गुणों और अच्छे २ कर्मों से उन की उन्नति है मुण्डे जूते (बूट) कोट, पतलून (और सब के हाथ का खाना) होटल में खाने पीने आदि साधारण और बुरे कामों से नहीं बढ़े हैं । सारांश यह है कि सब के हाथ का खाना खाने से उन्नति नहीं होती । इस से भी स्पष्ट धुनि निकलती है कि मनुष्य को सब के हाथ का भोजन नहीं करना चाहिये ॥

(प्र०) तो क्या अपने ही हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं ? इस का उत्तर महर्षि देते हैं—

१६=जो आर्य्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्य्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं । देखो स० प्र० पृ० २७१ पं० २—३ ॥

(प्र०) तो क्या अब तू सब आर्य्यों के हाथ का खावेगा ?

(उ०) नहीं, क्योंकि प्रथम तो महर्षि ही कहते हैं कि यदि आर्य्य पवित्रता से बनावे तो उस के हाथ का खाना चाहिये, और जो अपवित्रता से बनावे तो न खाना चाहिये । द्वितीय वर्त्तमान समय में इस का जानना बड़ा कठिन है कि मनुष्य आर्य्य समाजी कहलाने वाला आर्य्य धर्म्म पर चलता है या नहीं ? क्योंकि आर्य्य धर्म्म पर चलना ऐसा कठिन है जैसे खड्ग की पैनी=तीक्षण धार पर और अब मनुष्य आर्य्य समाजी कहलाने वाला आर्य्य धर्म्मी अर्थात् आर्य्यधर्म्म पर चलने वाला नहीं है तो उस के हाथ का भोजन करना भी मैं वैदिक धर्म्म और

महर्षि की आज्ञा के विरुद्ध समझता हूं। क्योंकि आर्य्यसमाजी तो आजकल बहुधा सब ही लोग बन जाते हैं। कल्पना कीजिये कि एक कायस्थ और एक कलाल दोनों ही अपना नाम आर्य्यसमाज के रजिस्टर में लिखाकर और ३-४ आने मासिक चन्दा देने का झूंठा सच्चा प्रण करके आर्य्य समाजी तो बन गये परन्तु मांस खाना और मदिरा पीना नहीं छोड़ा और न अपने कुल की कुरीतियों ही को त्यागा और न आर्य्य धर्म्म के सिद्धान्तों को ही ग्रहण किया। अरे बाबा! ग्रहण करना तो बहुत दूर रहा, पर यों कहो कि सुनाही नहीं। सुनें कौन? सुनें तो वह जिस को धर्म्म पर श्रद्धा हो। यहां तो धर्म्म पर स्नेह ही नहीं है। यह भी नहीं जानते कि सत्यार्थ प्रकाश कितना बड़ा पुस्तक है? और आर्य्य समाज के नियम क्या हैं? यहां तो केवल लेक्चर सुनने का शौक (रुचि) है। सो आठवें दिन आते हैं और लेक्चर सुनकर चले जाते हैं। कहो महाराज! अब मैं इन को आर्य्य धर्म्मी कैसे कहूं? और महर्षि दयानन्द जी महाराज की आज्ञा के विपरीत ऐसे आर्य्य समाजियों के हाथ का कैसे खाऊं?

बहुधा देखने में आता है कि बहुत से मनुष्य चित्त प्रसन्न करने के लिये समाज मन्दिर में आठवें दिन आ बैठते हैं और चार-आठ पैसे देकर सभासदों में अपना नाम लिखवा लेते हैं किन्तु आर्य्य धर्म्म से कुछ सम्बन्ध नहीं रखते॥

कुछ एक स्वार्थी मनुष्य ऐसे होते हैं जो अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये दो चार आना महीना देकर सभासद बन जाते हैं और फिर अच्छे अच्छे मनुष्यों से बात चीत करने का मौका (समय) पा जाते हैं परन्तु आर्य्य धर्म्म से कुछ भी प्रीत नहीं रखते हैं॥

कोई कोई धनाढ्य नाम पाने के लिये धन के बल से आर्य्य समाज के पदाधिकारी तो बन जाते हैं किन्तु आर्य्यधर्म्मानुयायी नहीं बनते और अपने पुराने (हिन्दू) धर्म्म का पालन करते रहते हैं॥

बहुधा कुछ एक हिन्दू, थोड़ा बहुत लिखे पढ़े हुए, धन के लोभ से आर्य्य समाजों में घुसकर वैदिक धर्म्म का प्रचार करने लगते हैं। परन्तु स्वयं आर्य्य धर्म्म से कुछ प्रेम नहीं रखते हैं। और जब निज आवश्यकतानुसार धनोपार्जन कर चुकते हैं। तब आर्य्य समाज से पृथक् होकर वैदिकधर्म्म की निन्दा करने लगते हैं॥

बहुधा चतुर चालाक दुरात्मा (पापी=दुष्ट) अपना नाम प्रगट (मशहूर) करने के लिये आर्य्य समाजी बनकर लैकचर देने लग जाते हैं और फिर धीरे धीरे पुराने और दृढ़ आर्य्य सभासदों को अपनी बनावटी मृदु वाणी से मोहित कर समाज के पदाधिकारी बन जाते हैं और पुनः दुराचार करते हुए मनमानी घरमानी करते लग पड़ते हैं इस से समाज की बहुत कुछ हानि होती है। परन्तु कुछ एक सभासद् (निर्बलात्मायें) महर्षि के मिसन का बिगाड़ होते हुए देखकर भी लैकचरों के लोभ से पापात्मा के दुराचारों पर कुछ भी दृष्टि नहीं देते और यदि कोई पूछे तो कह देते हैं कि "भाई ! इन सब बातों (त्रुटियों) को जानते तो हम भी हैं पर क्या करें ? दुधारी गाय की दो लात सहनी हीं पड़ती हैं । क्योंकि इन का लेकचर चटपटा मसालेदार होता है इसलिये बहुत से मनुष्य आते हैं जिस से समाज की रौनक (शोभा) बढ़ जाती है" ॥

अरे ! वाहरे निर्बलात्माओ !! वाहरे दुधारू गाय की दो लातें सहने वालो !!! धन्य है तुम्हें कि लैकचरार से तो इतना प्रेम करते । परन्तु समाज की हानि होने का कुछ भी विचार नहीं विचारते ॥

सोचने से इस निर्बलता का कारण यही प्रतीत होता है कि लोगों को ईश पर भरोसा नहीं है ॥

इसी प्रकार श्रीमान् महाशय बाबूराम जी सभासद आर्य्य समाज भूड़ बरेली लिखते हैं । कि—

अगर ग़ौर से देखा जाये तो आर्य्य समाज का मेम्बर बनना लोगों ने मामूली सा काम समझ रक्खा है जिस वक्त हमारे सामने आर्य्य समाज के पवित्र और पाक असूल पेश किये जाते हैं तो हम खुश होजाते हैं और झट दो या चार आने की कुरबानी महीने में समझ कर आर्य्य समाज के मेम्बर बनने को तयार हो जाते हैं लेकिन असूलों पर अमल्दरामद का सवाल जिस वक्त पेश होता है तो कोनों में दुबकते फिरते हैं । देखो सद्धर्मप्रचारक जिल्द १८ नम्बर १० पेज ११ कालम २ लाइन ३६ ॥

श्रीमान् महाशय मुन्शीराम जी सम्पादक सद्धर्मप्रचारक जालन्धर लिखते हैं । कि—

लोग आर्य्य समाज में क्यों आते हैं ? यदि सर्व सज्जन केवल वैदिक धर्म्म की शरण ग्रहण करने के लिये ही आर्य्य समाज में सम्मिलित होते तो सांसारिक

कष्टों का सामना होने पर न गिरते। कोई लिहाज मुलाहिज़े से कोई आजीविका के लालच से और कोई घर बसाने के मोह से आर्य्य समाजी बनता है। .... मतवादी तो परलोक में शारीरिक आनन्द का लालच देते हैं, आर्य्य समाजी इस लोक में ही आर्थिक सहायता से धर्म कराना चाहते हैं। क्या धर्म्म के मर्म को समझने का हम लोग कभी प्रयत्न करेंगे ? देखो सद्धर्म प्रचारक भाग १९ संख्या ९ पृष्ठ १७ कालम १ लाइन १४॥

आगे चल कर महाशय जी फिर लिखते हैं कि मैं जानता हूं कि जिस प्रकार अन्य सुसाइटियों में भी बहुत लोग विविध उद्देश्य लेकर सम्मिलित होते हैं वैसे ही आर्य्य समाज में भी सम्मिलित हुए हैं। कोई बड़ी आयु तक कोई अर्धाङ्गिनी न मिलने के कारण केवल इस आशा पर ही आर्य्य समाज का मेम्बर बना है कि विधवा विवाह कर के वह न केवल अपना घर ही बसा लेगा प्रत्युत संसार में संशोधक (Reformer) का उच्च पद भी ग्रहण कर सकेगा। कोई श्राद्ध और अन्य प्रकार के खर्च के बोझ से तङ्ग आकर आर्य्य समाज का सभासद बन जाता है। कोई केवल जन्म के जाति बन्धनों से छूटने के लिये ही आर्य्य समाज की शरण में आता है इत्यादि। देखो सद्धर्म प्रचारक भाग १९ संख्या ११ पृष्ठ ९ का० १ लाइन १५॥

अब मैं अपने कथन की पुष्टता के लिये यहां पर आप को वह वाक्य भी सुनाता हूं जो कि श्री मान्यवर महात्मा मुनशीराम जी मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार ने अपने साप्ताहिक समाचारपत्र नाम सद्धर्म प्रचारक भाग १८ संख्या ५० पेज ८ और ९ में प्रकाश किये हैं॥

संशयात्मा विनश्यति ॥ ७५ ॥

अष्टाङ्गयोग का वर्णन कट्टर से कट्टर मतवादी के सामने करो, उन की सच्चाई का लोहा वह उसी समय मान जायगा। यम नियम की व्याख्या कर के नास्तिक से सम्मति पूछो, वह भी खुले दिल से उन के सार्वभौम बल के आगे शिर झुका देगा। वर्णाश्रम धर्म की व्याख्या वेद द्वारा बड़े भारी पक्षपाती के सामने रक्खो, वह भी उन को मनुष्य समाज के क्लेशों को दूर करने का एक मात्र साधन मानने के लिये तय्यार हो जायगा। किन्तु ऐसी पवित्र शिक्षा के अनुगामी होते हुए

भी क्यूं आर्य्य समाजस्थ पुरुषों की दशा अब तक शोचनीय है ? इस का उत्तर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने से यह मिलता है कि अविश्वास ही आर्य्य समाज की सामाजिक अवनति का कारण हो रहा है। मैं पहिले भी कई बार लिख चुका हूं कि वैदिक सत्य के समर्थन के लिये अन्य मतावलम्बियों से बितण्डा करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है, किन्तु अविश्वासी हृदयों ने इस का यह उत्तर दिया कि वैदिक धर्म को गालियां देकर अन्य मतावलम्बी आर्य्य समाज को खाजावेंगे। यदि तुमारा धर्म पर ऐसा ही विश्वास है तो यह चाल कब तक चलेगी, अन्त को एक दिन भण्डा फूटेगा ही। मनु महाराज कहते हैं:—

आचारः परमोधर्म्मः ॥ ७८ ॥

किन्तु इस के विरुद्ध न केवल दुराचारी पुरुषों को उन के सांसारिक ऐश्वर्य के कारण आर्य्य समाजों में मुख्य पद दिये जाते हैं, प्रत्युत दुराचारी पुरुषों को वैदिक धर्म प्रचार की पवित्र वेदी पर बैठा कर उन से उपदेश सुने और सुनवाये जाते हैं। जब कभी मैंने किसी आर्य्य समाज के अधिकारियों के ऐसे कर्तव्य का नोटिस लिया तो उत्तर आश्चर्य जनक मिला। "महाशय! जानते तो हम भी हैं कि श्री—जी बदचलन हैं किन्तु उन की वक्तृत्व शक्ति पर सर्वसाधारण मोहित हैं। वार्षिकोत्सव की शोभा कैसे बढ़े। तुम्हारे सदाचारी उपदेशक को लेकर क्या करें जब उस के व्याख्यान को सुनने के लिये लोग ठहरते ही नहीं" इस प्रबल न्याय का क्या उत्तर दिया जावे। क्या अधर्मी के मुंह धर्म का उपदेश फली भूत हो सक्ता है ? वेद चाहे इस का कुछ ही उत्तर दे, किन्तु आर्य्य समाज के कतिपय अधिकारी अपने "तजुर्बे की बिना पर" यही कहते जायंगे कि जब उद्देश ठीक है तो बुरे साधनों से भी काम लेना बुरा नहीं, कारण क्या है ? हम लोगों को सत्यधर्म के बल पर विश्वास नहीं। यदि विश्वास हो तो क्या यह समझलें कि सत्य सूर्यवत् स्वयम् प्रकाशित नहीं होसक्ता। जो सत्य बालक मूलशङ्कर को अपने प्रेम की ग्रन्थि में बान्ध कर बन जङ्गल घुमा ऋषि दयानन्द बना सकता था, क्या उस के सर्व साधारण तक पहुंचने में तुम्हारी सहायता की आवश्यक्ता है ॥

भगवान कृष्ण ने सच कहा है। अविश्वासी का नाश होता है। विश्वासी ही जीता रहता है। यदि आर्य्य समाज के सभासदों को वेदों पर सच्चा विश्वास होतो क्या उन को उस के फैलाने में दुराचारियों की सहायता की आवश्यक्ता हो और

क्या फिर अपने मन्तव्य की पुष्टि के लिये उन्हें शब्द जाल का सहारा लेने की आवश्यकता हो। मेरी सम्मति में समय आगया है जब कि मतवादियों के आक्रमणों की परवा न करते हुवे आर्य्य समाज के विद्वान् उपदेशकों तथा समाचार पत्रों के सम्पादकों को केवल वैदिक धर्म की सच्चाइयों को मनुष्य मात्र तक पहुंचाने में ही लगना चाहिये, किन्तु इस से भी बढ़कर आचार शुद्धि की ओर लग जाना चाहिये।

राजर्षि मनु भगवान कहते हैं—

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताप्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्य लक्षणम् ॥ ७७ ॥

दुराचार का नाश करने वाला सदाचार ही है इसलिये समझ लेना चाहिये कि बिना सदाचार के मनुष्य का मनुष्यत्व कुछ भी नहीं है। आचार शब्द को इङ्गलिश शब्द Charactor का पर्याय वाची कहसक्ते हैं, किन्तु भाव उस से बढ़कर इस से निकलता है। उमर आचार से बढ़ती है। तब नास्तिक को भी आचार के आगे नमस्कार करना पड़ता है। और उत्तम प्रजा भी आचार से ही उत्पन्न होती है। न केवल यही, किन्तु माता पिता तथा राजा भी प्रजा का आचार के बल से ही पालन कर सक्ते हैं। सांसारिक धन तो एक ओर रहा जिस मुक्ति रूपी अक्षय धन की प्राप्ति के लिये आर्य्य समाज सी सभाओं का अस्तित्व है उस अक्षय धन को प्राप्त कराने वाला भी सदाचार ही है इस लिये दुराचारी पुरुष को अपना भाई समझते हुए और उस की पुनरुन्नति के लिये प्रयत्न करते हुए भी उस को उच्चाधिकार नहीं देना चाहिये ॥

बहुधा मनुष्य आलस्य के वशीभूत होकर प्रत्येक पुरुष के हाथ की (चाहे वह दुराचारी ही क्यों न हो) बनी हुई रसोई (खाना), चाहे वह अपवित्र ही क्यों नहो, खालिया करते हैं। और उन से कोई प्रश्न करे तो चट से उत्तर देदेते हैं कि स्वामी जी ने कहा है कि "भोजन बनाना शूद्र का काम है"। परन्तु उन को यह नहीं मालूम कि महर्षि ने शूद्र किस को कहा है ? शूद्र के क्या लक्षण बताये हैं ? भोजन बनाने के समय शूद्र को किन किन नियमों का पालन करना चाहिये? शूद्र को किस प्रकार पवित्र रहना चाहिये ? परन्तु कहने और खाने वालों का क्या दोष है ? क्योंकि उन विचारों ने सत्यार्थप्रकाश के दर्शन तक तो किये ही नहीं हैं

प्यारे भाइयो ! भोजन बनाना भी चौदह विद्याओं में से एक है । इसी लिये चारों वर्णों के मनुष्यों को इस का सीखना उचित है ॥

एक समय महर्षि ने यह जान कर, कि द्विज लोग (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य) रसोई करना नहीं जानते, बड़ा पश्चाताप किया ॥

(प्र०) अरे भाई ! कब किया था ?

(उ०) सुनिये ! जब महर्षि दयानन्दजी कानपुर में थे तब एक दिन आपने श्रीमान् पंडित हृदय नारायण कौल दत्तात्रेय जी शर्म्मा वकील से कहा था कि:—

१७=तुम्हारे कशमीरियों में भोजन अच्छा बनता है । अफसोस है, और तो दूर किनार, लोग पाक (भोजन) बनाना भी भूल गये ॥

देखो श्रीमान् धीर वीर पं० लेखराम जी कृत महर्षि जीवन चरित्र पेज ११४ लाइन ११ और १२ ॥

क्या महर्षि के इन शब्दों से स्पष्ट विदित नहीं होता ? कि द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य) को भी स्वयं (अपने हाथ से) भोजन बनाना चाहिये ॥

इसलिये प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि जहां तक हो सके वहां तक शुद्धता से पवित्र भोजन करे क्योंकि पवित्र भोजन करने से सन्तान और बुद्धि उत्तम होती है और अपवित्र भोजन से सन्तति और समझ बुरी उपजती है । इस विषय पर श्री मुनिवर चाणक्य जी कहते हैं:—

दीपो भक्षयते ध्वांतं कज्जलं च प्रसूयते ।
यदन्नं भक्षयते नित्यं जायते ता दृशी प्रजा ॥ ७८ ॥
चा० नी० अ० ८ । ३

अर्थ—दोहा

जिन वस्तुन आरोगिये । बुद्धिहु तैसी होय ।
अंधकार भक्षत प्रदीप । कज्जल प्रसवै सोय ॥ ७९ ॥

अन्यच

दीप भखत तम नित्य प्रति । काजल करि उत्पन्न ।
वैसी सन्तति होत है । जो जैसा खा अन्न ॥ ८० ॥

और भी ॥

रहिमन खोटी आदि को । सो परिणाम लखाय ।
ज्यों दीपक तम को भखै । कज्जल वमन कराय ॥ ८१ ॥

मैं बाज़ारू दूध, दही, पेड़ा, बर्फी, खोआ आदि पदार्थों को भी पवित्र नहीं समझता ॥

मैं भड़भूजा के भाड़ के भुने हुए चना और परमल आदि चबेना को महा अशुद्ध जानता हूं ॥

इति

नोट—

पढ़त थके नहिं कोय । इमि कारण लिख लेख लघु ।
पाठक अर्पण सोय । आशय लेहु विचार मित ॥

॥ * ॥ पाठकों से प्रार्थना ॥ * ॥

यदि कोई सुजन अपवित्र भोजन न करने की पुष्टता में कुछ लिखकर भेजेंगे तो वह लेख उन के सुनाम सहित द्वितीय–भाग में छपा दिये जावेंगे ॥

विशेष–प्रार्थना

समालोचना करने वाले प्रिय पाठकों से विशेष प्रार्थना है कि वह अपनी सम्मति प्रकाश करने के पूर्व इस लेख को आद्योपान्त पढ़कर लेखक के भाव को समझलें ॥

धन्यवाद ॥

मैं निम्न लिखित महाशयों को शतसः धन्यवाद देता हूं । कि जिन्हों ने इस लेख के लिखने में मुझे बहुत सी बातें बताई हैं ॥

१=श्रीमान् पण्डित नटवर लाल जी चतुर्वेदी आर्य्य भिषक् महामन्त्री माथुर सभा मथुरा ।

२–श्रीमान् पण्डित धूजीसिंह जी चतुर्वेदी जागीरदार व मुहल्लेदार व मंत्री माथुर सभा मथुरा ।

३–श्रीमान् पण्डित दत्तराम जी चतुर्वेदी आयुर्वेदोद्धारि सम्पादक मथुरा ।

४– " " गयादत्त जी " काव्यतीर्थ मथुरा ।

५– " " नवनीतलालजी" कविवर मथुरा ।

६– " " भूरामल जी " कुलीन मथुरा ।

७–श्रीमान् पण्डित शालिग्राम जी शर्म्मा नागर उपप्रधान ओल्ड आर्य्य समाज मथुरा ।

८–श्रीमान् पण्डित वालकराम जी नागर शर्म्मा मंत्री आर्य्य विद्यार्थी समाज मथुरा

९–श्रीमान् पण्डित रामलाल जी त्रिवेदी भरतपुर ।

१०– " " त्रिलोकीनाथदास जी द्विवेदी अलवर ।

११– " " हरीशङ्कर जी शर्म्मा उपदेशक आर्य्य समाज शिमला ।

१२– " वावू परमानन्द जी वर्म्मा मन्त्री } ओल्ड आर्य्य समाज

१३– " वावू रमनलाल जी गुप्त उपमन्त्री } मथुरा ।

॥ ※ ॥ अधिक–धन्यवाद ॥ ※ ॥

सव से अधिक धन्यवाद के योग्य श्री मान्यवर चतुर्वेदी पण्डित श्री रामदास जी रायवहादुर के प्रिय पुत्र श्रीमान् चतुर्वेदी पण्डित छोटेलाल जी डिप्टीकलेक्टर मुज़फ्फ़रनगर और श्रीमान् चतुर्वेदी पण्डित प्यारेलाल जी वी० ए० एल० एल० वी० मुनसिफ ललितपुर के गुरू जी महाराज श्री केशवदेव जी शर्म्मा चतुर्वेदी जी हैं, कि जिन महाराज ने मेरे ऊपर कृपा करके इस लेख के लिखने में बहुत कुछ सम्मति–सहायता दी है और इस के संशोधन में अपना अमूल्य समय व्यय किया है। ये गुरू जी महाराज एक वड़े साधारण सुभाव के सुयोग्य और परोपकारी पुरुष हैं। आर्य्य धर्म्म के पूर्ण प्रेमी हैं। प्रतिक्षण प्रत्येक के दुःख में सम्मिलित होते हैं। और सव के साथ कृपा किया करते हैं। खास कर मेरे ऊपर तो वहुत ही वहुत ॥

* ओ३म्-खम्ब्रह्म *

॥ अन्तिम-प्रार्थना ॥

अरे मेरे प्यारे भाइयो !

यदि आप पवित्र, स्वादिष्ट और पुष्टक भोजन करने की रुचि रखते हो तो निम्न लिखित अमूल्य वाक्यों पर ध्यान धरते हुए गो की रक्षा कीजिए क्योंकि गौरक्षा से मनुष्य के दोनों लोक सुधरते हैं। यथा-दोहा-

श्री गोपाल प्रसन्न हित, गो पालहु दिन रैन।
जब तक जीवहु सुख यहां, मरण हुए हूं चैन ॥

॥ अमूल्य-वाक्य ॥

प्रभाती नं० १

जागियो दयाल लाल मात है दुखारी ॥ टेक ॥

तुम तो सोये सुख की नींद, तज के हम से प्रेम प्रीति। होती हैं लाखों अनीति, कष्ट पड़ें भारी ॥ जागियो० ॥ १ ॥ हैं कहां हलधर गुपाल, दशरथ नृग धरमपाल। कौन्तेय पञ्चलाल, दधीच से व्रतधारी। जागियो० ॥ २ ॥ जिन के समय सुख अपार, भोगे हम विपुलवार। अब तो हैं तुम्हारी वारि, भारत नर नारी। जागियो० ॥ ३ ॥ दुःख पै मेरे प्राण वार, कीजिये मातृ उद्धार। चाहे लहु यश अपार, चाहे महामारी। जागियो० ॥ ४ ॥

प्रभाती नं० २

जागियो बलि जात वीरो जागियो बलि जात ॥ टेक ॥

जोड़ आलस देखो प्यारो, दिवस है कै रात ॥ वीरो जा० ॥ १ ॥ तुम्हीं मेरे प्राण रक्षक, तुम्हीं हो पितु मात। आश तुम्हारी कर के आयो, शरण दीजो तात ॥ वीरो जा० ॥ २ ॥ देशवासी दुखित तुम्हरे, अब कहां कुशलात। सुत पिता में प्रेम नाहीं, कौन किस की बात ॥ वीरो जा० ॥ ३ ॥ देश अपना है नहीं, अब धन की के तक बात। विपत में सब धर्म छूटे, होत गौ अनघात ॥ वीरो जा० ॥ ४ ॥ शरकरा गौरक्त मिश्रित, जान कर क्यों खात। लोभ ला-

लच लल्लो चप्पो, हमें अब न सुहात ॥ वीरो जा० ॥ ५ ॥ देवता हैं गौ तुम्हारी, कहो मुख से मात। पुत्र जीवित शीश कटते, धर्म की गति जात ॥ वीरो जा० ॥ ६ ॥ म्यूनिसपलेटी के हो मेम्बर, राजा पूछे बात। कहन में क्या सुख दुखत है, या बिगड़ी जात ॥ वीरो जा० ॥ ७ ॥ वीरता भारत की जग में, प्रथम से विख्यात। हो के सुत भारत के पीछे, हटत काहे जात ॥ वीरो जा० ॥ ८ ॥ शरकरा की बात केतक, सोओ मत एक रात। सेठ साहूकार सब मिल जाव, होत प्रभात ॥ वीरो जा० ॥ ९ ॥ बीनती कर जोड़ करता, अवधू सुनियो तात। आज ही है दिवस पछिताओगे, पुनि है रात ॥ वीरो जा० ॥ १० ॥

प्रभाती नं० ३

जागियो श्री वीर धीर भारत बल जाई ॥ टेक ॥

अब हूं चेतो सुजान, भारत के जात प्रान। रह्यो नाहिं लेश मान, कैसी नींद आई ॥ जागियो० ॥ १ ॥ सुख और सम्पति गंवाय, राज पाट सब विहाय। काला काफिर कहाय, लाज नाहिं आई ॥ जागियो० ॥ २ ॥ गौअन के शीश कटत, लाखन गो नित्य घटत। मानो गो वंश मिटत, रक्त नद बहाई ॥ जागियो० ॥ ३ ॥ भारत आरत पुकार, कहत देउ दुःख टार। अपनो धन प्राण वार, धर्म लो बचाई ॥ जागियो० ॥ ४ ॥ भारत जननी पुकार, आरत कहि बार बार। बेटा लीजो उबार, अधिक दुखित माई ॥ जागि० ॥ ५ ॥ कीजे देशी प्रचार, वस्तु सर्व अन्य टार टार। बाढ़े सुख धन अपार, फैलि है बड़ाई ॥ जागियो० ॥ ६ ॥ कठिन नियम मन विचार, साहस जिन देवहार। देश धर्म लो सम्हार, रक्त हू बहाई ॥ जागियो० ॥ ७ ॥ कुंती सुत पंच लाल, रावण विक्रम भुआल। तेऊ गये [illegible] गाल, तुम न अमर भाई ॥ जागियो० ॥ ८ ॥ कायर पड़ सेज मरत, शूर समर करणी करत। कीरति जग जिन की भरत, अन्त स्वर्ग जाई ॥ जागियो० ॥ ९ ॥ अब नहिं तुम बचत काल, मन में करलो ख़्याल। भारत दुख देव टाल, मौत प्लेग आई। ॥ जागियो० ॥ १० ॥ सेवाजी उदन आल्ह, पूर्वज तुम्हारे भुआल जिन को लखि डरत काल, वीरता पराई ॥ जागियो० ॥ ११ ॥

तिन के सुत धर्म खोय, अपयश जग बोय बोय। जीवत नित रोय रोय; क्रूरता कमाई ॥ जागियो० ॥ १२ ॥ अज हूं प्रिय होश लाय, शीश धर्म हित कटाव। देश धर्म जीत जाव, शूरता दिखाई ॥ जागियो० ॥ १३ ॥ अवधू कहै रोय रोय, जीवन की आश खोय। भारत में मेल होय, बिगरी बन जाई ॥ जागियो० ॥ १४ ॥

भजन नं० ४

अब फिर चेतियोरे तुम हो वीर महा मतवारे ॥ टेक ॥

तुम ही कटे महा भारत में, शूर वीर रजपूत। फिर आल्हा ऊदल कहलाये, लाखन भये सपूत ॥ अब फिर० ॥ १ ॥ भारत में गो माता कटतीं, सुनते नहीं पुकार। आज राज धन धर्म गंवाया, छिन गये सब अधिकार ॥ अब फिर० ॥ २ ॥ इस भारत में दूध की नदियां, बहती थीं हर आन। तहां बहै अब रक्त गाय का, उठो करो अस्नान ॥ अब फिर० ॥ ३ ॥ ब्राह्मण क्षत्री वैश्य कहावैं, हिन्दू कहैं पुकार। तिन के जिअत कटें गो माता, जीवन को धिक्कार ॥ अब फिर० ॥४॥ लाल लाल मुख देख डरो ना, मत साहस को हारो। एडवर्ड का सुमिरन कर के, भारत दशा सुधारो ॥ अब फिर० ॥ ५ ॥ अपने सूर बिराने जानत, सो मत मनहिं विचारो। भारत वासी दुखित देखि कै, करि हैं सकल सहारो ॥ अब फिर० ॥ ६ ॥ देश धर्म हित कटौ प्यारे, नहीं अमर हो यार। इक दिन धर के प्लेग दाब है, चण में कर देय छार ॥ अब फिर० ॥ ७ ॥ धर्म युद्ध को कङ्कन बांधो, कहि अवधेश पुकार। प्राण त्याग जननी हित कीजै, कीरति बढ़ै अपार ॥ अब फिर० ॥ ८ ॥

होली नं ५

भारत धूलि मिलाय विदिशिया ने कैसी है धूम मचाई ॥ टेक ॥

प्रथम छीन कर देश तुम्हारो, धन पर घात लगाई। शस्त्र हीन कर अवज्ञा कर दियो, बहु विधि नाच नचाई ॥ विदि० ॥ १ ॥ बनज कृषी व्यवहार तुम्हारे, सब में टांग अड़ाई। दाव घात कर तुम्हें पछाडो, छाती छरत कसाई ॥ विदिशिया० ॥२॥ दूषित शक्कर की अबिर उड़ायो, बहु रोगन की माई। भर पिचकारी गौ रक्त

की, भारत भूमि रंगाई ॥ बिदिशिया० ॥ ३ ॥ अवधविहारी कैसी तो होरी, विधि ने हाय दिखाई। कुमति कुम कुमा देश में फैला, ताफल की प्रभुताई ॥ बिदिशिया० ॥ ४ ॥

भजन नं० ६

कैसे सोते हैं वे सुध हाय जै गोपाल के कहने वाले ॥ टेक ॥

उन्हें कैसी यह निद्रा है छाई, हमें पकड़े खड़ा है कसाई। हाय गले में छुरी लगाई, हो दया तो कोई बचाले ॥ कैसे० ॥ १ ॥ हे श्री कृष्णचन्द्र गोपाला, कहँ छिपे नन्द के लाला। तेरे भक्त हैं सेठ भुआला, उन में से कोई बुलाले ॥ कैसे० ॥ २ ॥ वे कहते हैं मुझ से माता, यदि सच्चा हो यह नाता। क्यों पुत्र लखें अपघाता, जननी किस से न्याय कराले ॥ कैसे० ॥ ३ ॥ है माता का दूध. हराम, जब लग होय न ऐसा काम। चाहें लुटजावे धन अरु धाम, कोई मेरे प्राण को आन लिखाले ॥ कैसे० ॥ ४ ॥

भजन नं० ७

गौ माता कहना छोड़ दो निर्लज्जो दूध हरामी ॥ टेक ॥

किस मुख से अब कहते माता, जो नहिं बर्तो सच्चा नाता। देख देख आंखिन से घाता, बनो नर्क के गामी ॥ निर्लज्जो० ॥ १ ॥ लालच सूद ब्याज का करके, दो धन हत्यारों को भर के। बुरा कहैं चाहे घर बाहिर के, बेशर्म सहो बदनामी ॥ निर्लज्जो० ॥ २ ॥ बहु गुण युत सन्तान हमारी, उपकारी रहे सदा तुम्हारी। अन्न वस्त्र पय की फुलवारी, एक एक से नामी ॥ निर्लज्जो० ॥ ३ ॥ जो चाहो निज देश भलाई, तन मन धन तज करौ उपाई। वेग लेव मम प्राण बचाई, नहिं हुइहौ गड्डामी ॥ निर्लज्जो० ॥ ४ ॥

नोट—यह सातों भजन श्रीमान् अवध विहारी लाल देशसेवक सम्पादक, वैश्य हितैषी बेवर ज़िला मैनपुरी के रचे हुए हैं ॥ देखो आर्य्य मित्र वर्ष ९ अङ्क १४ पेज ३ कालम १ ॥ इति ॥

पुस्तक मिलने का पता-ठिकाना—

☞ बाबू रमन लाल जी गुप्त,

छत्ताबाज़ार—मथुरा।